गुलेरीजी की अमर कहानियाँ

सम्पादक
डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी
एम ए (हिन्दी संस्कृत) पी एच-डी


कृष्णा ब्रदर्स
महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर

मूल्य सत्ताइस रुपये/प्रथम संस्करण 1981/प्रकाशक जयकृष्ण अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर/मुद्रक अशोक अग्रवाल, टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर/आवरण प्रकाश

समर्पण

"सरस्वती साधक स्व पितामह को जिनका कृतित्व प्रकाशन के अभाव मे कालकवलित होना हुआ जनस्मृति [illegible] तथा जो जीवन पर्यन्त अर्थलाभ एव यशोपार्जन [illegible]

प्राक्कथन

पितामह पं० चन्द्रधर शर्मा जी के कृतित्व के समायोजन तथा उनकी रचनावली के प्रकाशनार्थ 1901 से 1922 की पत्र पत्रिकाओं को ढूंढने के प्रयास में भटकने का एक लाभ मुझे यह भी प्राप्त हुआ कि स्वर्गीय पिता योगेश्वर शर्मा गुलेरी की अनेक कविताएँ, निबन्ध तथा कथाएं जो कि 1945 से 1952 की अवधि में प्रकाशित हुई थीं दृष्टिगत हुई। पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की बहुचर्चित तीन कथाओं का एक मात्र संकलन जिसे स्वर्गीय चाचा श्री शक्तिधर गुलेरी ने 1930 में सरस्वती प्रेस बनारस से प्रकाशित कराया था, ढूंढे से भी पाठकों को नहीं मिलता था। तदनन्तर 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का कांटा' तथा 'उसने कहा था' अनेकों हिन्दी कथा-संग्रहों में ली गई पर पाठ भेदादि के कारण तीनों कहानियों का शुद्ध रूप अप्राप्त हो चला था। विशेषकर 'उसने कहा था' में कुछ पद्यांशों को 'अश्लील' करार देते हुए कई संग्रहों में छोड़ा जाता रहा जिससे कि कथा के मूल भाव बोध क्रमबद्धता तथा वैचारिक कल्पनात्मक बिम्बों के यथावत प्राकट्य में निस्संदेह बड़ी कमी महसूस की गई।

श्री भीमसेन त्यागी ने सारिका जनवरी सन 1968 ईस्वी में (पृष्ठ 18—19) 'उसने कहा था' की पाठ भेद सम्बन्धी समस्या की ओर हिन्दी प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न भी किया था। साहित्यिक महत्त्व के अनेक पत्रों में अनेक सजग कथा प्रेमियों का ऐसा ही आग्रह मुझ तक पहुँचता रहा। इसी विचार को दृष्टिगत रखते हुए 'उसने कहा था' की मूल पाण्डुलिपि के कुछ पृष्ठों की आकार प्रतिलिपि इस पुस्तक में प्रकाशित की जा रही है। पाण्डुलिपि के अंतिम पृष्ठ पर निचले भाग के दाएँ कोने में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और बाएँ कोने में तारीख सहित हस्ताक्षर सरस्वती सम्पादक एवं भाषा संस्कारक पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के हैं।

डा उदयभानु सिंह ने अपने शोध प्रबन्ध महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग (प्रथम सस्करण, पृष्ठ 269) मे मत व्यक्त किया है कि प महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जहा एक ओर प्रेमचन्द, पदमलाल बख्शी और ज्वालादत्त शर्मा आदि की कहानियो को खुलकर सम्पादित किया वही उन्होने चन्दधर शर्मा गुलेरी की आख्यायिकाओ का भी सुधार किया। उसने कहा था की मूल पाण्डुलिपि म जो यत्र तत्र सशोधन परिवद्ध न हैं, व सभी द्विवेदी जी के नही, अपितु गुलेरी जी क उनके अपने सशोधन हैं। पाण्डुलिपि म मोट हस्ताक्षरा महित सशोधन गुलेरी जी के तथा बारीक रखाम्रा म कतिपय परिवतन द्विवदी जी क हैं। यह स्पष्ट है कि तत्कालीन साहित्यिक महारथी द्विवेदी जी, जिनकी आक्रामक लेखनी से बच निकलना और सरस्वती म प्रकाशन उन दिनो कठिनतर था गुलेरी जी के लेखन मे सशाधन करते हुए अत्यन्त सयमित अनुशासित रह। केवल एक स्थान पर ये सुनसान मची हुई = सन्नाटा छाया हुआ तथा उसने के स्थान पर = लहना ने कहा कर दिया गया है। गोदी म लिटाए क स्थान पर गोदी मे रखे जसे सशोधन मात्र सशोधनाथ किए गए लगत हैं। इन सशोधनो के अतिरिक्त कोई और सशाधन कथा म नही किया गया और कहानी सरस्वती मे प्रकाशित हुई। मूल पाण्डुलिपि के इस प्रस्तुतीकरण स उसन कहा था के सशोधन सम्बन्धी भ्रमो तथा पद्याशो को अश्लील समझते हुए छोडने और मूल कथा के अग भग सम्बन्धी समस्यापरक चिन्तन का निराकरण हो सकेगा। कहानी सकलना मे जो 'उसने कहा था' का सक्षिप्त रूप प्राप्त होता रहा है उससे निश्चय ही कहानी का प्रभाव कम होता है। कहानी की सवेदना की प्रेषणीयता, वातावरण तथा कथोपकथनो की दृष्टि से ये अश आवश्यक रूपण ध्यातव्य है। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक युग म जबकि कहानी अपने प्रारम्भिक काल में थी गुलेरी जी न सशक्त, उत्कृष्ट व सर्वांगपूर्ण कथाओ के लेखन से हिन्दी कथा साहित्य को सक्षम व समृद्ध किया। प चन्द्रधर गुलेरी की सगृहीत इन तीन कहानियो के अतिरिक्त उनकी एक कहानी 'पनघट" की चर्चा गुलेरी जी से हुए (अब मेरे पास सुरक्षित) पत्र-व्यवहार मे तत्कालीन साहित्यिक महारथियो ने की थी। गुलेरी जी की सन् 1905 की निजि डायरी मे भी इस रचना का उल्लेख है। इस कहानी की प्राप्ति की भी पूर्ण सम्भावनाओ क प्रति मैं आश्वस्त हू।

श्री योगेश्वर शर्मा गुलेरी की चौदह कहानियाँ उपलब्ध हैं जिनम स पाँच कथाएँ प्रस्तुत सग्रह में ली गई हैं। 1950 में विश्व कहानी प्रतियोगिता के अन्तगत हिन्दुस्तान टाइम्स न अन्तर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता का आयोजन नौ भ पाओ की पत्र पत्रिकाओ के सहयोग स किया था। साप्ताहिक हिन्दुस्तान द्वारा आयोजित इस कथा प्रतियोगिता म तीन हजार कथाओ म

ग जो सवश्रेष्ठ व 7 पुरस्कृत कथाएँ थी—उनम 'रामजी की मरजी' तीसरे स्थान पर 400 रुपए तथा 'जीवन का सगीत' छठे स्थान पर 250) रुपए से पुरस्कृत हुई थी। 1950 के वष में स्व० योगेश्वर शर्मा गुलेरी प्रतिष्ठित कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। मनोविज्ञान विज्ञान तथा मानवीय सम्बन्धो की सूक्ष्मानुभूतियो का सफल चित्रण उनकी कथाओ में अधिक स्पष्ट हुआ। स्व० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कथा परम्परा का निर्वाह श्री योगेश्वर की कथाओ म सहज रूपेण दृष्टिगत होता है अतएव स्वर्गीय पिता पुत्र की कथाएँ यहाँ एकत्रित की गई हैं।

प्रस्तुत सग्रह में तृतीय व छठे स्थान पर पुरस्कृत (जो कि साप्ताहिक हिन्दुस्तान में 13 मई 1951 क बाद पुन प्रकाशित भी हुई) के अतिरिक्त स्व० योगेश्वर जी की तीन अन्य कथाएँ 'नर और नारी' 'चोट' व 'उसका टुकडा' भी सगृहीत हैं। प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी की तीन कथाओ और स्व० योगेश्वर गुलेरी की पाँच कहानियों की कथा यात्रा का पाथेय यह सग्रह है। कथाओ का मूल्याकन विज्ञ पाठक स्वय ही करेंगे अतएव व्यामोह के आरोपो तथा कथ्यविस्तार के सम्पादन से मैं बचा हूँ। हाँ परिशिष्ट में प रामचन्द्र शुक्ल से डा० नगेन्द्र तथा आधुनिक समीक्षकों तक की सम्मतियाँ वचारिक विनिमय व प्रतिक्रियाओ के सहज बोध हेतु जोडी गई हैं। सम्मति लेखकों का मैं आभारी हू। प्रकाशित व अप्रकाशित दोनो सम्मतियाँ ली हैं।

श्रीयुत प बनारसी दास चतुर्वेदी श्री झाबरमल शर्मा, विष्णु प्रभाकर तथा सत्येन शर्मा के स्वर्गीय पिता से रहे प्रेम भाव ने मुझे इस प्रकाशन में अधिक गति दी। अव्यवस्थित कथा समायोजन काय में सहायिका सिद्ध होते हुए सहधर्मिणी श्रीमती कीर्तिनिधि एम ए ने गृहस्थी की कठिनाइयो से जिस प्रकार मुझे मुक्त रखा, वह प्रशसनीय हो चला है। सटीक यथावत मुद्रण तथा प्रकाशन में श्री जयकृष्ण अग्रवाल तथा ओमप्रकाश सिंगादिया ने अत्यधिक तत्परता प्रदर्शित की है। श्रद्धेय गुरुवर प्रोफेसर रामसूर्ति शर्मा, अध्यक्ष सस्कृत विभाग, पजाब विश्वविद्यालय चडीगढ की यथासमय—पूववत् कृपा मेरी सम्पत्ति है। मात्र आभार प्राकट्य भी एक कमी होगा।

पाठको से निवदन है कि प्रस्तुत कथा सग्रह विषयक प्रत्यक प्रकार के विचारो व प्रतिक्रियाओ का मैं स्वागत करूँगा। आशा व विश्वास बनाए हुए हूँ कि यथाशीघ्र स्व० प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के शताधिक निबन्धो एव रचनावली के चारो भाग गुलेरी शताब्दी वष 1982–1983 से पूव अवश्यमेव हिन्दी जगत के सम्मुख प्रस्तुत कर सकूँगा।

चन्द्र–भवन
गुलेर (कागडा) - 176028 विद्याधर शर्मा गुलेरी
हिमाचल प्रदेश

इस पुस्तक मे

जीवन परिचय

प चन्द्र शर्मा गुलेरी का जन्म वाराणसी तथा जयपुर के राज सम्मान के केन्द्र, दार्शनिक, वैयाकरण, सस्कृतज्ञ धर्मव्यवस्थापक महामहोपाध्याय श्री प शिवराम जी शर्मा के घर 25 आषाढ सम्वत वि 1940 तदनुसार 7 जुलाई सन् 1883 ई को जयपुर म हुआ। पण्डित शिवराम जी शास्त्री सस्कृत कालेज जयपुर के प्रधानाचार्य तथा राज दरबार के प्रमुख धार्मिक सलाहकार तथा काशी की विद्वदमण्डली तथा शास्त्रीय महारथियो में मूर्धन्य थे सवमा य उद्भट विद्वान थे। घर मे सस्कृतमय वातावरण के कारण चार-पाँच वर्ष की आयु मे ही विद्वान् पिता के निर्देशन म सस्कृत सम्भाषण के अभ्यस्त हुए। अमरकोष के चार सौ श्लोक तथा अष्टाध्यायी का बडा भाग इस छोटी आयु म ही उन्हे कण्ठस्थ था। श्री दीन दयाल शर्मा तथा प मदनमोहन मालवीय जी द्वारा स्थापित भारत धर्म महामण्डल के वार्षिकोत्सव पर सस्कृत मे भाषण देकर दस वर्ष की अवस्था मे गुलेरी जी ने दिग्गज विद्वानो को हतप्रद व आश्चय चकित किया।

1893 मे महाराजा कालेज जयपुर मे प्रविष्ट होने पर अंग्रेजी शिक्षा व विविध विषयो का अध्ययन करते हुए 1897 ई म द्वितीय श्रेणी म मिडल परीक्षा तथा सन 1899 ई मे इलाहाबाद विश्व विद्यालय से एन्ट्रेंस परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास की। एन्ट्रेंस मे ऐसा अभूतपूर्व सवप्रथम सवप्रमुख परीक्षा परिणाम जयपुर राज्य के शिक्षा इतिहास मे नही आ सका था। अत महाराजा जयपुर ने जयपुर राज्य की ओर से उन्हे स्वर्णपदक और अनेक पुरस्कार दिए। तदनन्तर उन्होने एफ ए की परीक्षा मे कलकत्ता के समस्त कालेज मे अंग्रेजी पत्र मे द्वितीय स्थान पाया। सन 1900 मे गुलेरी जी ने जवाहरलाल जैन (जैन वैद्य) जी से मिलकर जयपुर मे पुस्तकालय तथा नागरी

भवन की स्थापना की। तब वे मात्र सोलह सत्रह वर्ष के थे। लार्ड नार्थब्रुक स्वर्ण पदक प्राप्ति के साथ सन् 1903 मे चन्द्रधर जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बी ए परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की और प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसी वर्ष 1902-1903 मे जब कर्नल सर स्विण्टन जैकब तथा कैप्टन ए एफ गैरट जयपुर की वेधशाला के जीर्णोद्धार के लिए कार्यरत हुए तो उन्होने ऐसे भारतीय विद्वान की खोज की जो भारतीय भाषाओ के साथ-साथ पाश्चात्य भाषाओ मे भी पूर्ण समर्थ हो गुलेरी जी अपनी धाक तथा विद्वत्ता की प्रसिद्धि के कारण इस कार्य के निमित्त चुने गए।

जयपुर के मानमन्दिर, ज्योतिष यन्त्रालय के सुधार परिवर्तन व पुनरोद्धार के साथ-साथ गुलेरी जी ने सम्राट सिद्धान्त जैसे कठिन ज्योतिष ग्रन्थ का अंग्रेजी मे अनुवाद किया। वेधशाला के निरीक्षण, यन्त्रो के सुधार एवं निश्चय के अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र के अपने असाधारण ज्ञान से 1902 मे 19 वर्ष की वय में ही कैप्टन गरेट के सहयोग से Jaipur observatory and its builders नामक विशाल ग्रन्थ का गुलेरी जी ने निर्माण किया। उनके लिखे इस ग्रन्थ पर तथा यन्त्रालय सम्बन्धी उपलब्धियो पर जयपुर राज्य ने तीन सौ रुपए की पुस्तकें तथा विशेष सम्मान आपको प्रदत्त किया। सर स्विटन जैकब, कैप्टन गैरट तथा पाश्चात्य विद्वानो ने अनेक प्रशंसा पत्र देते हुए भारतीय विद्वानो के स्वर मे स्वीकार किया कि गुलेरी जी भारतीय शास्त्र के प्रकाण्ड तथा असाधारण पण्डित थे। वैदिक संस्कृत, पाली, प्राकृत अपभ्रंश तथा हिन्दी, मराठी, बंगला व अंग्रेजी के असाधारण पाण्डित्य के साथ लेटिन फ्रेंच एवं जर्मन का पूर्ण अभ्यास भी इन्होने इस अवधि तक सम्पादित कर लिया था।

सन् 1904 मे श्री जयपुर दरबार के आदेश से खेतड़ी के राजा जयसिंह बहादुर के अभिभावक तथा शिक्षक होकर इन्हें मेयो कॉलेज अजमेर जाना पड़ा। सन 1907 मे जयपुर राज्य के समस्त सामन्तों की शिक्षा के अध्यक्ष हुए। सन 1916 मैं ये जयपुर हाउस के मानमिंद पद के अधिकारी हुए और साथ ही मेयो कालेज के संस्कृत प्रधानाचार्य बने। मेयो कालेज मे व कश्मीर के महाराजा हरिसिंह, प्रतापगढ के नरेश रामसिंह, ठाकुर रामसिंह (प्राईम मिनिस्टर जयपुर) गाजीगढ के ठाकुर कुमार सिंह तथा गोहट के ठाकुर दल सिंह आपके शिष्यो मे प्रमुख थे। नौ वर्षों तक मानसिंह पद पर सफल कार्य करते हुए रेजिडेन्ट जयपुर से विशेष सम्मानित होते हुए गुलेरी जी की ... फलीफूली। यही रहकर आपने ... मे एम ए की ...

1920 म जब महामना मदनमोहन मालवीय जी काशी हिन्दू विश्व विद्यालय को सगठित करने म जुटे तो अनको पत्रो क आग्रहो तथा व्यक्तिगत अनुरोध स मालवीय जी ने 1920 म मेयो कालेज क प्रधानाचाय पद म गुलेरी जी को बनारस लाना चाहा। 1922 मे बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय की परिषद न गुलेरी जी को मनीन्द्र नन्दी चेयर का प्रोफेसर और प्राच्य विभाग का प्रिंसिपल अध्यक्ष नियुक्त किया।

1920 से 1922 तक गुलेरी जी ने काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका का सम्पादन किया। सन 1921 ई के चारो अङ्को म (जो कि नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रकाशित हुए) कुल बाइस लेख प्रकाशित हुए थे जिनम से सम्पादकीय के अतिरिक्त स्वय गुलेरी जी क ही चौदह लेख हैं। यह उनकी अध्ययनशीलता प्रभाव तथा विद्वत्ता का स्पष्ट प्रमाण था। बनारस विश्वविद्यालय क प्राच्य विभाग के अध्यक्ष रूप म आपने अनथक परिश्रम से काय किए। आचाय रामचन्द्र शुक्ल बाबू, श्याम सुन्दर दास तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने मिलकर मानो हिन्दी उद्धार, सस्कार तथा विकास का व्रत ले लिया था। किन्तु 12 सितम्बर सन 1922 को अल्पायु मे दिवगत होते हुए गुलेरी जी ने भारतीय विद्वत्ता तथा गरिमा को अनाथ किया।

गुलेरी जी का पुरातत्व सम्बन्धी अनुसन्धान

प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की गणना भारत के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ताओ मे उस समय की जाती थी। प गौरी शकर हीराशकर ओझा के साथ मिलकर अशोक की धम लिपियो का गुलेरी जी ने सम्पादन किया। उनके पुरातत्व सम्बन्धी काय तथा उपलब्धियाँ इस प्रकार थी—

जयपुर आब्जरवेटरी एण्ड इट्स विल्डस (सन 1902 सवाई माधोसिंह के सरक्षण मे पायनर पैस इलाहाबाद से प्रकाशित ग्रन्थ)। मनोरजक श्लोक (सन 1910 ई से सरस्वती मे प्रकाशित) ककातिका मास्क (अग्रेजी मे दि इण्डियन एण्टीक्वरी मे जनवरी 1913 म प्रकाशित) अशोक की धमलिपियाँ (सन 1920 से 1922 मे नागरी प्रचारिणि पत्रिका मे प्रकाशित) देवकुल (सन 1920) तथा यूनानी प्राकृत (सन 1920 प्रकाशन ना प्रचा पत्रिका) शैशुनाक की मूर्तियाँ (सन् 1920 म ना प्र पत्रिका म प्रकाशित) तथा

पुरानी हिन्दी (प्रकाशन नाग प्रचा पत्रिका सन् 1922 ई)। श्री ग्रियसन ने पुरानी हिन्दी लेखमाला, की अत्यन्त प्रशसा की। हिन्दी की वर्णमाला लिपियों पर भी गुलेरी जी का काफी साहित्य है जो कि अप्रकाशित रहा है। डा गौरी शकर हीरा शकर ओझा बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू राखाल दास बनर्जी काशीप्रसाद जायसवाल और श्री हर प्रसाद शास्त्री के अतिरिक्त प्रसिद्ध यूरोपियन पुरातत्त्व वेत्ताओ प्रोफेसर एच लिन्डस, विसेटस्मिथ डाक्टर बार्नेट प्रोफेसर फूशे आदि की मान्यताओ तथा शोध स्वीकृतियो पर गुलरी जी ने समालोचनात्मक टिप्पणिया लिखकर पुरातत्व के क्षेत्र मे मान्यताओ के पुनर्विचार के लिए अध्येताओ का बाध्य किया। पुरातत्त्विक क्षेत्र मे अनुसन्धान की दृष्टि से गुलेरी जी का अपूर्व योगदान है।

भाषाविज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धाता गुलेरी जी

डा, ग्रियसन चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी के समर्थक तथा विशेष प्रशसक रहे। डा ग्रियसन के शोधकार्य के बाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा से बाबू श्यामसुन्दरदास जब सयुक्त प्रान्त म हस्तलिखित प्रतियो की खोज शोध के लिए निरीक्षक नियुक्त हुए तब श्यामसुन्दरदास जी न सभा के इस प्रस्ताव को इस शर्त के साथ स्वीकार किया था कि तीन वर्षों तक पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलरी भाषा वैज्ञानिक शोध कार्यों म उन्ह पूर्ण रीति से सहायता देंगे। गुलेरी जी न इसे स्वीकार भी किया। अखिल भारतीय स्तर पर भाषा विज्ञान क क्षेत्र म तब पण्डित गुलेरी जी का लोहा माना जाता था। प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के भाषायी अनुसन्धान मे निम्नलिखित शोधपूर्ण निबन्ध प्रसिद्ध तथा प्रकाशित हुए —क्या संस्कृत हमारी भाषा थी ? (सन् 1904) समालोचक म काकपद (1913 ई) उलुलु ध्वनि हुर्रा (1914 ई,) अमगल के स्थान प मगल शब्द (1915) पुरानी हिन्दी (1921) छट्ट 1922) डिंगल (1921) देवाना प्रिय (1922) पूर्णपात्र (1922) यत्रक (1922) तथा वैदिक भाषा म प्राकृत पन (1922 ई)।

पुरानी हिन्दी लेखमाला का प्रशसा सभी भाषा वैज्ञानिको तथा विशेषकर डॉ ग्रियसन ने तथा बुद्धचरित की भूमिका मे प रामचन्द्र शुक्ल न की। अपभ्रश की अधिकाधिक प्राप्त सामग्री के बावजूद भी आज तक इस पुरानी हिन्दी की विकासमाला जैसा प्रबन्ध अद्यावधिपयन्त प्रस्तुत नही हो सका है।

हिन्दी किसी प्रकार पारम्परिक मावदर्शिक भाषा का स्थान ग्रहण करती हुई आगे बढ़ी इसका स्पष्ट ज्ञान पुरानी हिन्दी में मिलता है जो नि सन्देह महत्वपूर्ण है ।

प्राचीन साहित्य, साहित्यिक शोध एवं लोक साहित्यिक अनुसंधान

विविध विषयक शोध पूर्ण टिप्पणियों, लेखों निबन्धों के द्वारा गुलेरी जी ने साहित्यिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व का अनुसंधान कार्य हिन्दी जगत को समर्पित किया । उनकी प्रसिद्ध प्रकाशित, साहित्यिक कृतियों का विवरण इस प्रकार है—वेद में पृथिवी की गति, विक्रमोवंशी की मूल कथा (1905 समालोचक पत्र में), जयसिंह प्रकाश, (1910 ई) पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (1913 की सरस्वती में) तथा अधिक सतति होने पर स्त्रीका पुनर्विवाह (1920), आत्मघात (1920), पाणिनी की कविता (1920) बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव (1920) सिंहल द्वीप में कालिदास का समाधि स्थल (1920) रट्टा छन्द (1921), कुछ पुराने रिवाज और मनोविनोद (1922) खूब तमाशा (1922) वेलावित्त (1922) एवं रामचरित और संस्कृत कवियों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाषा (1923) आदि रचनाएँ नागरी प्रचारिणि पत्रिका में प्रकाशित हुईं ।

तत्कालीन विद्वानों द्वारा सामादृत गुलेरी जी

गुलेरी जी की साहित्यिक प्रतिभा के अन्य विद्वानों की तरह स्वर्गीय डॉ आर भण्डारकर भी कायल थे । पूना से 25 मई 1910 को गुलेरी जी को जयपुर लिखे गए अपने पत्र में उनका मन्तव्य था— कृपया तनिक और व्याख्या कीजिए । जितने सुधार आपने सुझाए हैं वे निर्विवाद है जिनके लिए आप मेरे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं । पं महावीर प्रसाद द्विवेदी श्री पुरुषोत्तम टण्डन, रायबहादुर ओझा, माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, ज्वालादत्त शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और रामकृष्णदास गुलेरी जी को प्रकाण्ड पण्डित तथा विलक्षण साहित्यकार स्वीकार करते थे । श्री किशोरी लाल गोस्वामी कामता प्रसाद गुरु, केदारनाथ पाठक तथा राखालदास बंद्योपाध्याय ने भी गुलेरी जी का सदा आदर व सम्मान दिया । राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त तथा राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन का गुलेरी जी के प्रति विशेष आदर भाव रहा ।

तत्कालीन विदेशी विद्वानों में कैप्टन गैरट डॉ क्लाड, सर स्विण्टन जैक्ब एच लिडस, जर्मन विद्वान प्रो किलहरन तथा डा ग्रियसन आदि से वे अत्यधिक प्रशंसित एवं समादृत हुए। विभिन्न देशी तथा पाश्चात्य विद्वानों से उनका हुआ लम्बा पत्र व्यवहार इसका स्पष्ट प्रमाण है।

प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के तत्कालीन मित्रमण्डल में प्रमुख अन्य साहित्यकार गिरिजाप्रसाद द्विवेदी राधाकृष्ण मिश्र देवीप्रसाद मुंसिफ जोधपुर, पु हरिनारायण जी बी ए विद्याभूषण प केदारनाथ ज्योतिविद स्वामी लक्ष्मी राम जी राव गोपाल सिंह जी खरवा, सेठ दामोदर दास राठी, प रामदयालु जी वैद्य अजमेर प झाबरमल जी शर्मा, प्रतिभा सम्पादक प ज्वालादत्त जी शर्मा तथा प पद्मसिंह शर्मा आदि थे।

गुलेरी जी के आलावका में प माधव प्रसाद मिश्र, प गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी रामानारायण शर्मा एवं प द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी जी भी सम्मिलित थे। भारतीय विद्वत्ता के जाज्वल्यमान प्रखर सूर्य की भांति 1904 से 1922 तक गुलेरी जी का समस्त भारत में लोहा माना जाता रहा। कोई भी साहित्यिक समारोह प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अनुपस्थिति में सफल आयोजन नहीं समझा जाता था। साहित्यकारों के विवाद में व्यवस्था देने का कार्य गुलेरी जी ही करते थे।

गुलेरी जी की साहित्यिक विद्वत्ता तथा ऐतिहासिक भारतीयता के तलस्पर्शी ज्ञान से प्रभावित होकर शारदा पीठ के अधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ने दिनांक 29-5-1920 ई को 'इतिहास दिवाकर' की उपाधि से विभूषित किया एवं शारदा मठ में आपकी विद्याविषयक परिश्रम, सहृदयता तथा गुण ग्राहकता की प्रशंसा की।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में साहित्यिक, संस्कृति, कला तथा समस्त हिन्दी वाङ्मय के विकास में इस प्रकार श्री प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने निबन्धकार और कहानीकार के साथ-साथ कवि, आलोचक पत्रकार, पत्रलेखक और अनुसंधाता के रूप में जो साहित्य भारतीय विद्वत्ता को दिया वह तत्कालीन साहित्यिक सम्पदा की वह विपुल राशि है जिसके योगदान के लिए प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी का नाम भारतीय साहित्य के प्रमुख निर्माताओं में (थोड़ा लिखकर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व सटीक व्याख्याकार के रूप में) सर्वोपरि माना जाता रहेगा।

1912 मे 1919 की अवधि के बीच प्रकाशित होने वाले गुलेरी जी के भाषा तथा साहित्य पर अग्रेजी म (प्रकाशित) शोध पत्र इस प्रकार थ —

1 आन शिव भागवत इन पातञ्जलि [दि इण्डियन एन्टीक्वरी 1913]

2 ए पोइम बाइ भास [दि इण्डियन ए टीक्वरी 1913]

3 भवातिका मा वस [दि इण्डियन ए टीक्वरी 1919]

4 दि रियल आथर आफ जयमङ्गला ए कामेन्टरी आन वात्सायन कामसूत्र [दि इण्डियन एन्टीक्वरी 1913]

5 ए माउन्ड भोनागम [रूपम् सन 1920]

6 दि लिटररी क्रिटिसिज्म [रूपम् सन 1919]



श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की साहित्यिक प्रतिभा



स्व प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी
(1883—1922)

प्रसिद्ध लेखक राफेल के एक ग्रंथ में वर्णन आता है कि जब सत्य की खोज में लोग मंदिर पहुँचे तो वहां की पुजारिन ने उन्हें पीने के लिये एक प्रकार की मदिरा दी। वह मदिरा किसी को मीठी, किसी को तिक्त तथा किसी को कड़वी लगी। इसी तरह कला व साहित्य की किसी भी वस्तु का मूल्य आंकने में मतभेद पाये जाते हैं। कला विशेषज्ञों के मतभेद होते हुए भी प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी एक कण्ठ से हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी घोषित की गई है। 1915 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित 'उसने कहा था' 1911 में भारत मित्र में प्रकाशित सुखमय जीवन तथा 1913 में लिखित उनकी तीसरी कहानी बुद्धू का कांटा साहित्यिक महारथियों व सहृदय समालोचकों द्वारा इतनी अधिक महत्वपूर्ण समझी गई कि विश्व कथा-साहित्य में उनका स्थान प्रेमचन्द विक्टर-ह्यूगो, तालस्ताय, मोपासां तथा तुर्गनेव के समकक्ष ठहराया गया है।

उन्होंने 30 मई 1905 को अपनी डायरी में लिखा है 'वक्ता विमतौ यस्य मृत्युमय प्रमादेन । कथं स न समान स्यात पुत्रेण विगुण गुन ?'—सिद्धान्त [illegible] । [illegible] शुक्लयजुर्वेद में वाजसनेयि संहिता की श्री महीधर कृत [illegible] भाष्य पर पाश्चात्य विद्वान श्री वेबर के परिष्कारयुक्त संशोधन [illegible] रहे थे ।

[illegible] करते हुए उनका संस्कृत छन्द, गुणों, अलंकारों व पद रचना कौशल पर गहरी पाण्डित्यपूर्ण पकड़ था एक उदाहरण उनका यह संस्कृत रचना है—

'पापानिवारणिक [illegible] महामहत्त्व' भावसपूजन [illegible] सुरालयेषु । [illegible] पापोपयोगि निजवास विहीन देवाम् । [illegible] सुरालयवारि सुरालये वा । [illegible] ॥' व वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' के अनुसार [illegible] अद्भुत व्यक्ति थे । उनकी असाधारणता उनकी साहित्यिक प्रतिभा पर हावी हुई, यही कारण है कि हिन्दी संस्कृत और [illegible] विद्वान होते हुए भी उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में भी [illegible] लिया । [illegible] अंग्रेजी व संस्कृत में [illegible] की सूची [illegible] है [illegible] पाश्चात्यों [illegible] विलक्षण [illegible] लिखे [illegible] मोक्ष [illegible] और [illegible] है । इसका [illegible] 1913 और 1920 के बीच [illegible] एक्टिविटी [illegible] । सन् 1903 से 1922 तक आपकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई । [illegible] साहित्य [illegible] और [illegible] पत्रिकाओं में, यथा [illegible] प्रतिभा तथा विद्यार्थी [illegible] प्रकाशित हुए । [illegible] प्रकाशित [illegible] की गुहि [illegible] की मासिकी प्रकाशिनी [illegible] । [illegible] की हिन्दु [illegible], [illegible]

[illegible] विश्वधर्मों का [illegible] यथा, [illegible] ने भी, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]

के उत्तरार्ध के कर्ता, चारण, चाणूर अग्र, देवकुल, पचमहाशब्द, पाणिनी की कविता, भारद्वाज गृह्यसूत्र यूनानी प्राकृत सिंहलद्वीप मे महाकवि कालिदास का समाधिस्थल अवति सुन्दरी डिंगल न्यायघण्टा, पुरानी पगडी राजाओं की नियत से बरकत हुए बौद्धों के काल म भारतवर्ष मारेसि मोहि कुठाऊ, पुरान राजाओं की चिट्ठिया गोदानम् वैदिक पद्धति तथा पुरानी हिन्दी आदि प्रमुख निबन्ध हैं। यू तो पण्डित जी के निबन्धो की सख्या 100 के करीब है परन्तु उनके केवल 25-26 निबन्धो का प्रकाशन ही काशी नागरी प्रचारिणी सभा गुलेरी ग्रन्थ में अ-सगत कर पाई। गुलेरी जी की समस्त कृतियों को प्रकाशित करने की योजना काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने सूर्यकुमारी पुस्तकमाला के अन्तर्गत 'गुलेरी ग्रन्थ' शीर्षक म 800 पृष्ठो मे स्वीकृत की थी। गुलेरी ग्रन्थ की-इतिहास, भाषा रचना और आलोचना इन चार कोटियो मे प्रकाशित होने की योजना दुर्भाग्यवश पूर्ण न हो सकी और काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने (जिसको गुलेरी जी अपनी स्वजाया कन्या की तरह मानते थे) केवल गुलेरी ग्रन्थ का पहला भाग, इतिहास ही स्व कृष्णानन्द जी के सम्पादन म प्रकाशित करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझी। पुरानी हिन्दी शीर्षक से गुलेरी जी के कई निबन्ध नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाग दो मे प्रकाशित हुए थे जिन में से शौरसैनी, पैशाची, भूतभाषा अपभ्रंश, शारङ्गधर पद्धति से उद्धृत प्रकरण प्रमुख हैं। प्रसिद्ध जैन आचार्य मेरुतुग का प्रबन्ध चिन्तामणि जो स 1361 मे लिखा गया था पर गुलेरी जी ने विद्वत्तापूर्ण व्याख्याएं लिखीं। पुराने हिन्दी कवि राजा मुञ्ज के कृतित्व को वे ही स्वय प्रकाश म लाए।

प चन्द्रधर शर्मा की साहित्यिक प्रतिभा की महत्वपूर्ण गति व विशेषता यह थी कि वे 'कल्पभेदेन व्याख्ययम्' सिद्धान्त के अनुसार ही शास्त्रीय, और साहित्यिक समस्याओं की सहज व्याख्या करते थे। गायकवाड सस्कृत सीरीज मे काव्यमाला के अन्तर्गत प्रकाशित सोमप्रभ और सिद्धपाल की रचनाओं के 16 उदाहरणो का विवेचन करके उन्होंने इनका कहीं खण्डन व कहीं मण्डन किया है। खडी बोली, जिसे गुलेरी जी म्लेच्छ भाषा का नाम देते हैं के अध्ययन मे उन्होंने भूषण कविराज की 'शिवा बावनी' पर मुसलमानी प्रभाव को स्वीकारा है। पुरानी हिन्दी' ग्रन्थ मे पृष्ठ 115 से 124 तक हेमचन्द्र के व्याकरण और कुमारपालचरित म से पाणिनी पर उनका विद्वत्तापूर्ण लेख पतजलि के 'शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृति को सत्य सिद्ध करता है। जहा वे पाणिनि के मत से असहमत हैं वहा स्थान-स्थान पर उन्होंने अपनी पूर्ण असहमति भी व्यक्त की है। इसी प्रकार हेमचन्द्र की व्याकरणयुक्त रचना पर भी उन्होंने बहुत अधिक लिखा। हेमचन्द्र व्याकरण

क वे अधिकारी विद्वान थे। वे ही हेमचन्द्र-व्याकरण का अधिकांश भाग पुरानी हिन्दी ग्रन्थ के माध्यम से प्रकाश मे लाए। यह सत्य तथ्य उनके ग्रन्थ म दिए गए शताधिक उदाहरणो एव उनके पाण्डित्यपूर्ण विवेचन स पूरी तरह स्पष्ट है। हिन्दी किस प्रकार पारस्परिक और सार्वदेशिक भाषा का स्थान ग्रहण करती हुई आगे बढ़ी, इसका बहुत ही स्पष्ट ज्ञान उनकी 'पुरानी हिन्दी पुस्तक म उद्धृत अवतरणो से हो जाता है। इसके समन्वय के लिये उन्होने स्थान स्थान पर प्रान्तीय भाषाओ, व्रजभाषा के सवसामान्य रूपो, प्रयोगो आदि के शब्द-प्रति-शब्द उद्धरण भी बराबर दिए हैं। हिन्दी की सार्वदेशिक या राष्ट्रीय प्रवृत्ति और प्रकृति का अनुशीलन करने के लिए यह प्रबन्ध बडे काम का है। इस सोपान पर आकर पुरानी हिन्दी म किस प्रकार प्रादेशिक प्रवृत्तिया स्फुट हो चली थीं, इसका परिचय इसी प्रबन्ध के आधार पर स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'बुद्धचरित' की भूमिका म दिया है और हिन्दी की तीनों प्रधान उप-भाषाओं—व्रज अवधी और खडी—का पार्थक्य स्पष्ट किया है। यद्यपि अपभ्रंश की बहुत सी सामग्री इधर उपलब्ध हो गयी है पर उसके जोड का दूसरा प्रबन्ध आज तक प्रकाश म नही आ सका है।

सन् 1904 से 1917 तक का समय गुलेरी जी के जीवन म विशेष महत्व रखता है। इसी समय म उन्होने विशेष अध्ययन किया व सौ से ऊपर लेख लिखे जिसके फलस्वरूप वे पुरातत्व भाषातत्व प्राचीन इतिहास सस्कृत, वैदिक सस्कृत पाली तथा प्राकृत के सवश्रेष्ठ विद्वानो म गिने जाने लगे। सन् 1900 म गुलेरी जी ने जयपुर के जैनवैद्य जी की सहायता स नागरी भवन की स्थापना की थी तथा कई वर्षों तक जयपुर स ही प्रकाशित होने वाली हिन्दी पत्रिका 'समालोचक का सफल सम्पादन किया। सन् 1904 मे गुलेरी जी खेतडी के राजा जयसिंह के मुख्य अभिभावक तथा शिक्षक बना कर मेयो कालेज, अजमेर म सस्कृत के प्रधानाध्यापक पद पर भेजे गये। सन् 1917 म वे जयपुर राज्य के समस्त सामन्तो के अभिभावक बने।

गुलेरी जी की वास्तविक साहित्यिक प्रतिभा का उत्कर्ष द्विवेदी युगीन हिन्दी निबन्धकारो की तुलना मे सहज ही आँका जा सकता है। हिन्दी निबन्ध का यह परिमाजन काल द्विवेदी युग से प्रारम्भ हुआ। आलोच्यकाल के प्रमुख निबन्धकारो मे प महावीरप्रसाद द्विवेदी, प माधवप्रसाद मिश्र, बाबू बालकृष्ण गुप्त प गोविन्द नारायण मिश्र बाबू श्यामसुन्दर दास प जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी बाबू गुलाब राय, अध्यापक पूर्णसिंह तथा प चन्द्र-

धर शर्मा गुलेरी हैं। परन्तु द्विवेदी युगीन जिन निबन्धकारों ने निबन्धों पर अपनी विशिष्ट भाषा और शैली के माध्यम से भारतेन्दु युग जैसी वैयक्तिक छाप लगाई है, वे हैं, प. माधवप्रसाद मिश्र अध्यापक पूर्णसिंह और प. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी। शताधिक शुद्ध ललित निबन्धों के रचनाकार गुलेरी जी के निबन्धों की विषय-व्यापकता और अनेकता के कारण किसी एक विशिष्ट कोटि में रख कर परखना असम्भव है। उनके निबन्ध प्राचीन साहित्य, पुरातत्व सामाजिक राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक वैज्ञानिक, धार्मिक दार्शनिक, ऐतिहासिक और वर्णनात्मक विषयों पर विचारात्मक-भावात्मक रूप में लिखे हुए प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य-भाषा, पुरातत्व और शोधपूर्ण विषयों पर उनके निबन्ध उन्हें द्विवेदी युग से बहुत आगे का सिद्ध करते हैं। आज तक आचार्य शुक्ल द्वारा उनके हिन्दी साहित्य में वर्णित कुछ एक निबन्धों के ही परिप्रेक्ष्य में निबन्धकार गुलेरी जी की हिन्दी साहित्य को देन को आँका जाता रहा है। यह कहना तथ्यपूर्ण व तर्कसंगत है कि उन्होंने भाषा और शैली के आधार पर निबन्ध साहित्य की जो सुदृढ़ नींव रखी उसी पर शुक्ल युग के उत्कर्षकाल का स्वर्ण-भवन निर्मित हुआ। उन्होंने जो कुछ लिखा, बहुत ठोस व सार्थक लिखा और सप्रमाण लिखा। आलोच्यकाल में विविध विषयों की अवतारणा और उनका रोचक एवं प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण हिन्दी साहित्य के निबन्धों में उनकी मौलिक देन है।

पुरातत्व सम्बन्धी उनके निबन्धों में जयपुर आबजर्वेटरी एण्ड इटस बिल्डर्ज, मनोरञ्जक श्लोक कशातिका मास, अशोक की धर्म लिपियाँ देवकुल, यूनानी प्राकृत, शैशुनाक की मूर्तियाँ तथा पुरानी हिन्दी आदि लेख प्रमुख हैं। इनका रचना काल सन् 1910 ई से 1922 ई तक है। गुलेरी जी ने पुरातात्विक अनुसंधान जैसे भाषायी अनुसंधान में भी स्थायी महत्व के शोध निबन्ध प्रस्तुत किए हैं। भाषा सम्बन्धी उनकी रचनाएं निबन्ध रूप में क्रमानुसार इस प्रकार प्रकाशित हुई हैं—क्या संस्कृत हमारी भाषा थी? (सन् 1904) समालोचक में, काकपद (1913 ई) उल्लू ध्वनि (दुर्गा 1914 ई) अमंगल के स्थान पर मंगल शब्द (1915) ई) सरस्वती में तथा पुरानी हिन्दी (1921 ई) छट्ठ डिंगल (1922 ई), देवानांप्रिय पूर्णपात्रे मन्त्रक तथा वैदिक भाषा में प्राकृतपन (1922 ई) में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में निकली।

अन्य विविध विषयों पर भी उन्होंने शोधपूर्ण लेख और निबन्ध 1905 ई तथा 1922 के दौरान लिखे। ये प्रायः प्राचीन साहित्य साहित्यिक खोज एवं लोक साहित्य पर आधारित है। यथा-वेद में पृथ्वी की गति,

विक्रमोवर्शी की मूल कथा समालोचक में, जयसिंह प्रकाश पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, सरस्वती में तथा अधिक सतति होने पर, स्त्री का पुर्नविवाह आत्मघात पाणिनी की कविता, बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव सिंहल द्वीप में कालिदास का समाधि स्थल, रडडा छन्द, कुछ पुराने रिवाज और विनाद, खूब तमाशा वेलावित्त एव रामचरित और संस्कृत कवियो में बिम्ब प्रतिबिम्ब भावादि रचनाए नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुई। निबंध महामहोपाध्याय मुरारीदास जी और हाहा ताता से माजिक विषयों पर लिख गए है। इनके अतिरिक्त डा महेन्द्रलाल सरकार वनानिक महत्ता की पृष्ठभूमि पर लिखित निबंध है। ऐतिहासिक राजनैतिक तथा सामाजिक घटनाओं का लखा जोखा देते हुए लेखक ने कल्पना का अत्यधिक सहारा न लेकर इतिहास ग्रंथो के सन्दर्भों द्वारा निबन्धो की रचना की। वैवस्वत के पुत्र मनु का मनुवैवस्वत् वाजपय और राजसूय यज्ञ का वाजपेय और राजसूय तथा इन्द्र के यज्ञ का सौत्रामणी का अभिषेक आदि निबन्धो में यही शैली सरस और सुन्दर विवेचन लिये सामने आई है। कुछ निबन्धो मे मतमतान्तरो के आधार पर विद्वत्तापूर्ण ठोस तथ्य कथ्य वर्णित हुआ है। इस श्रेणी विभाजन में प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के लेख चाणूर आन्ध्र कुमारिल कादम्बरी और दशकुमारचरित के उत्तरार्ध, खसो के हाथों ध्रुवस्वामिनी पच महाशब्द, पाणिनी की कविता, श्री श्री श्री महर्षि च्यवन की रामायण, याय का घटा तथा कछुआ धर्म आदि निबन्धों की गिनती की जा सकेगी। राजनैतिक विषय को लेकर इंडियन नेशनल कांग्रेस शीर्षक से एकमात्र निबन्ध अपनी पत्रिका समालोचक के सम्पादकीय में 1904 ई मे लिखा और कांग्रेस पर करारी चोट की। विविध विषयक घटनात्मक निबन्धो में घण्टा घर जयसिंह प्रकाश, पुराने राजाओ की गाथाए पुरानी पगडी और राजाओ की नीयत से बरकत प्रभृति को रखा जा सकता है।

विचारात्मक निबन्धो मे धार्मिक, तार्किक, आलोचनात्मक —सन्दर्भों में चिंतनपूर्ण विषयो का गम्भीर विवेचन और मीमांसा की गई है। ये निबन्ध प्रमुखतः पौराणिक, धार्मिक साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक तथा विविध विषयो पर लिखे गए है। धर्मपरायण रीछ इन का पौराणिक कथा का वर्णनात्मक शैली में तथा सोऽहम् एक गम्भीर दार्शनिक निबन्ध हैं। धर्मसंकट, आत्मघात और कछुआ धर्म धार्मिक विषयो पर लिखित विवेचनात्मक निबन्ध हैं। साहित्यिक विषयो पर ही लिखित काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यकर्ता खरे सज्जनो की खरी चिट्ठियाँ तथा समालोचक का चतुर्थ वर्ष आदि लेख और निबन्ध उल्लेखनीय हैं। खरे सज्जनों को खरी चिट्ठियां में व्यंग्यात्मक शैली में प मदनमोहन मालवीय जी की हिन्दी सेवा के प्रति, बड़ी नम्रता से सावधान किया गया है। महर्षियो की दृष्टि में उपाधियो के

भूखे लोगो पर व्यग्य, वशच्छेद म परिवार नियोजन के गुण दोषो को तकपूण व्याख्या, सगीत की धुन मे इण्टरव्यू के माध्यम से सगीत की तत्कालीन दशा का विवेचन और हाली की ठठोली वा एप्रिल फूल मे पश्चिमी-सभ्यता-प्रेमियो का मजाक उडाया गया है।

कवित्वपूण भावात्मक निब धो मे खुली चिट्ठी, कुछ लोगो के नाम, काशी, जय जमुना मैया जी की, बाबू अयोध्याप्रसाद के सस्मरण और मारेसि मोहि कुठाऊ आते है। जहा सामान्य भावात्मक निबन्धो की शैली वक्तृतात्मक तथा चिन्तनात्मक है, वहाँ कवित्वपूण गम्भीर भावात्मक निबन्धो मे शली का माधुय और बढ गया है। कुछ लोगो के नाम मे उपाधियो के भूखो का चित्रण, जय जमुना मैया जी मे वेंकटेश्वर समाचार की धम विषयक नीति का विवेचन, बाबू अयोध्या प्रसाद के सस्मरण मे बाबू जी की खट्टी-मीठी यादो का वणन और मारेसी मोहि कुठाऊ मे आय समाज पर भावपूण भाषा म मीठी चोट की गई है। उक्त सभी निबन्धों म भावो और विचारों का अनुशासनात्मक ढग से समावेश हुआ है।

इस प्रकार प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने विविध दाशनिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा धार्मिक विचारात्मक निबन्धो के योगदान स हिन्दी साहित्य को अत्यन्त महत्वपूण योगदान दिया। बीसवी शताब्दी में हिन्दी निबन्धो को विषय और शली की दृष्टि से सम्पन्न बनाने म पडित जी का महत्वपूण योगदान निस्सन्देह स्तुत्य प्रशसनीय एव ख्यात म बन पडा है। अब तक उनके कतिपय निब धो का लेकर ही लेखको ने लेखनी चलाई है। आवश्यकता पडित जी क समस्त निब धो के सम्यक मूल्याकन की है क्योकि तत्कालीन हिन्दी के विकास तथा समृद्धि मे इन निबन्धो का योगदान रहा है।

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता मे पत्रकार गुलेरी का योगदान उनके द्वारा जयपुर स प्रकाशित पत्र 'समालोचक' का सन् 1903 से 1907 तक का सफल सम्पादन था। सम्पादक के अतिरिक्त समालोचक के प्रमुख लेखक श्यामसुन्दर दास, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, गौरीशकर हीराशकर ओझा, शिवचन्द्र भरतिया, राधाकृष्णदास व बालकृष्ण भट्ट गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, गोपीनाथ, महेन्द्रलाल तथा अयोध्या प्रसाद खत्री थे। गुलेरी जी द्वारा सम्पादित समालोचक पत्र की विशिष्ट मर्यादा थी। सन् 1901 से 1910 तक की पत्र पत्रिकाओ म यह सर्वाधिक महत्वपूण पत्र था।

1903 से 1907 तक के चारो वष तत्कालीन पत्रकारिता म गुलेरी जी का पत्र समालोचक हिन्दी साहित्य की प्रमुख गतिविधियो का केन्द्र एव

अभिव्यक्ति का आधार रहा। वैश्योपकारक पत्र की 1904, 1905 की फाइलों को देखने से स्पष्ट ज्ञान होता है कि समालोचनाओं, टिप्पणियों में यत्र तत्र चर्चित समालोचक पत्र हिन्दी जगत में अत्यन्त प्रतिष्ठित हो चुका था। जयपुर से प्रकाशित समालोचक ने स्वस्थ पत्रकारिता के नए आयाम खड़े किए थे। सम्पादक चन्द्रधर गुलेरी स्वयं एक बी ए ब्राह्मण बंगाली प्रवासी महिला छद्म तथा प्रभात नाम से कई लेख टिप्पणियाँ समालोचनाएँ आदि लिखते थे। तब पत्रकारिता के द्वारा हिन्दी साहित्य में क्रान्तिकारी एवं प्रभावोत्पादक लहर दौड़ाने वाले व्यक्तियों में पं चन्द्रधर गुलेरी का विशिष्ट एवं शीर्षस्थ स्थान था। एक ओर तो पण्डित माधवप्रसाद मिश्र ने वर्ष 1900 ई में सुदर्शन नामक पत्र निकाला तो दूसरी ओर बाबू चिन्तामणि घोष ने सरस्वती मासिक पत्रिका की स्थापना की। इनसे प्रेरणा पाकर श्री जैनवैद्य जी के आग्रह पर गुलेरी जी ने जयपुर से जो समालोचक प्रकाशित किया उसकी लेखन शैली यथानाम तथा गुण के अनुसार थी जिसके गम्भीर शास्त्रीय तथा सर्वथा अछूते विषयों ने बड़े बड़े लेखकों को चकित कर दिया। 1901 से 1907 तक की समालोचक पत्र की पुरानी फाइलों का पूर्ण अध्ययन करने से आपकी सम्पादकीय क्षमता व आलोचन कला का पूरी तरह आभास हो जाता है। समालोचक का प्रथम अङ्क सन् 1902 के अगस्त मास में प्रकाशित हुआ था। प्रारम्भ में यद्यपि पत्र का मुख्य उद्देश्य श्रेष्ठ साहित्यिक समालोचनाएँ प्रस्तुत करना था, तदनन्तर सम्पादकीय टिप्पणियां समाचार, पुस्तक परीक्षा एवं अन्य लेखों के स्तम्भ इसमें जुड़े। हिन्दी पत्रकारिता में पुस्तक समीक्षा स्तम्भ का सर्व प्रथम प्रस्तुत करने का श्रेय गुलेरी जी के समालोचक को है क्योंकि सरस्वती पत्रिका में यह स्तम्भ जुलाई 1904 से ही प्रारम्भ हुआ था। समालोचक के सम्पादन में गुलेरी जी अपने सहयोगी पत्रों यथा —सुदर्शन सरस्वती, हिन्दी बंगवासी, भारतमित्र एवं वैश्योपकारक आदि को उनकी कमियों के प्रति सावधान करते हुए दिशानिर्देश देते थे। पत्र के मुख्य पृष्ठ पर निम्नलिखित वाक्य मुद्रित होता था—नीरक्षीर विवेक हंसाऽऽलस्यं त्वमेव तनेषु चेत्। विश्वस्मिन्नधुनाऽन्य कुलव्रतं पालयिष्यति क। (भामिनीविलास)। यह हिन्दी पत्रकारिता का प्रारम्भिक विकास काल था तथापि आलोचनात्मक वैविध्य तथा अपनी विशिष्टताओं के कारण समालोचक पत्र उन दिनों (1922—1907) अत्यन्त चर्चित रहा। न केवल समालोचक' का अपितु काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का भी गुलेरी जी ने 1920 से 1950 ई तक सफल सम्पादन किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के ये बड़े उत्साही सदस्य थे। श्यामसुन्दर दास जी उनके अन्तरंग मित्रों में से थे। काशी ना प्र सभा के गुलेरी जी कुछ समय तक अधिकारी भी रहे। उनके प्रभाव में ही शाहपुरा के राजाधिराज श्री

उम्मेद सिंह ने अपनी स्वर्गीया पत्नी सूयकुमारी की स्मृति मे एक पुस्तक-माला चलाने के लिये सभा को प्रचुर निधि प्रदान की। उस पुस्तक माला के गुलेरी जी ही सम्पादक रहे। जहाँ कही भी भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए, विद्वत्तापूर्ण किसी गवेषणा के लिये, सामाजिक कुरीति-निवारणार्थ अथवा राजनैतिक या आर्थिक समस्या सुलझाने के लिये उन दिनों कही भी कोई सभा होती थी, गुलेरी जी उसके प्राण होते थे। गुलेरी जी के प्रमुख शिष्यों में कश्मीर के महाराज हरिसिंह, प्रतापगढ के नरेश रामसिंह आर्मी मिनिस्टर जयपुर गाजीगढ के ठाकुर कुशलसिंह रोहेर के ठाकुर दलपत सिंह आदि थे। गुलेरी जी सफल व लोकप्रिय कवि भी थे। संस्कृत म उनकी कविताए अद्यापिद अह्नैव भवति (1910 ई) तथा 'राजशेखर को आशी-र्वाद' जो 1912 म मर्यादा मे प्रकाशित भी हुई उपलब्ध होती हैं। हिन्दी म उनका प्रमुख कविताओ मे एशिया की विजयादशमी, भारत की जय, आहिता-ग्निका, सुवी कमाल स्वागत और रवि 1904-1906 के बीच समालोचक मे प्रकाशित हुई थी। उनके द्वारा अनूदित कविताओं में बैंकनबन (1905 ई। तथा प्राकृत के कुछ सुभाषित मिलते हैं। ये 1911 ई मे सरस्वती में प्रका-शित हुईं। उन्होंने आग्रहवश कविता नहीं लिखी। स्फुट कविता शीर्षक से अपने समालोचक पत्र में वे महत्व हृदयोद्गार प्रकट करते थे। कवि के रूप में उनकी साहित्यिक प्रतिभा के मूल्यांकन का प्रश्न भी अनुत्तरित है। पत्र-लेखक के रूप में उनकी प्रतिभा असाधारण थी। आज भी मेरे पास संस्कृत हिन्दी व अंग्रेजी में उनके अनेक निजी व्यावसायिक साहित्यिक पत्र तथा उनको प्राप्त विदेशी तथा भारतीय विद्वानो से उत्तरित पत्रों की 70 से ऊपर संख्या उनकी लेखकीय प्रतिभा का सहज आभास देती है। उनके समस्त कृतित्व के समा-योजन प्रकाशन तथा मूल्यांकन का कार्य मैंने श्री प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी रचनावली (भाग चार) के रूप में सम्पन्न किया है। 1982-1983 का वर्ष गुलेरी शताब्दी वर्ष है तब तक उनके समस्त कृतित्व को हिन्दी साहित्यिक समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर सकना मेरा श्रेय, प्रेय व ध्येय है।

प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की साहित्यिक प्रतिभा उनके कहानीकार पत्रकार, निबन्ध-लेखक, समालोचक, कवित्तकार एव अनुसंधाता पक्ष के अध्ययन से इतनी अधिक निखर कर सामने आती है कि जिसकी तुलना गुलेरी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व से ही की जा सकती है विद्वानो के पारखी प मदनमोहन मालवीय जी ने 1920 में गुलेरी जी को काशी हिन्दू विश्वविद्या-लय में प्राचीन भारतीय साहित्य, इतिहास और संस्कृति विभाग की मनीन्द्र नन्दी चेयर (पीठ के अध्यक्ष के रूप में धर्म कालेज के प्रधान पद पर सम्मान प्रतिष्ठित किया परन्तु भारतीय विद्वत्ता तथा हिन्दी का दुर्भाग्य कि साहित्य

जगत का यह सूर्य 12 सितम्बर, सन् 1922 को उनतालीस वर्ष की अल्पायु में ही अस्त हो गया।

उस समय वे उनतालीस वर्ष, दो महीने तथा पाँच दिन के थे। उनके पुत्र (मेरे पिता) स्व योगेश्वर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखित उनके अन्तिम संस्मरणों का प्रत्यक्ष अनुभव कलकत्ता से प्रकाशित नया समाज पत्रिका के वर्ष 2, खण्ड 4, अंक 6 पूर्णांक 24 में पृष्ठ 427 से 430 तक प्रकाशित हुआ था। जिसके अनुसार अन्तिम क्षणों में भी वे विद्वानों से शास्त्रार्थ, गीतापाठादि के प्रलाप में व्यस्त थे और शतपथ ब्राह्मण पर एक जर्मन विद्वान की टीका का खण्डन कर रहे थे। स्व योगेश्वर गुलेरी द्वारा लिखित पं चन्द्रधर जी के अन्तिम क्षणों के सजीव चित्रण का वह लेख यहाँ यथावत् उद्धृत किया जाता है।

— —

गुलेरी जी अपने शब्दो मे (भाषानुवाद)

मैं पजाब प्रा त के कांगड़ा जिले मे गुलेर नामक ग्राम निवासी सारस्वत ब्राह्मणो के सम्मान्य कुल का वशज हू। ज्योतिष के विद्वान और पचाग विद्या के कर्त्ता के रूप मे मरे प्रपितामह की प्रसिद्धि उन दिनो म पटियाला और बनारस तक फैली हुई थी। हमार वश के लाग माफी और जागीर की भूमि का उपभोग करत है और हम इतिहास प्रसिद्ध गुलेर के करोच क्षत्रियों के मुख्य पुरोहित और गुरु है। गुलर के राजा ने मेरे पिता जी को गुरु क रूप म पालकी गद्दी और ताजीम का सम्मान प्रदान किया था और उनके बाद मुझे भी वही प्रतिष्ठा प्राप्त है।

मेर पिता पण्डित शिवराम जी अपन समय म बनारस के विशिष्ट सस्कृत विद्वान् माने जात थे और जयपुर के स्वर्गीय महाराजा रामसिहजी बहादुर न अपने दरबार के राजपण्डित पद के लिए उनका चयन किया था। वे जयपुर दरबार के वरिष्ठतम पण्डित थ और लगभग 48 वष तक जयपुर के सस्कृत कालेज मे उपाध्यक्ष एव सस्कृत व्याकरण, भाषा विज्ञान और वेदान्त, दशन के आचाय पद पर प्रतिष्ठित रहे। स्वर्गीय एव वतमान महाराजा तथा समाज के सभी वर्गों के लोगा स प्रखर पाण्डित्य तथा निमल-चरित्र के कारण उनको महान समादर प्राप्त था। वे जयपुर मे सस्कृत अध्ययन के आद्य प्रवतको म थे और उनकी शिष्य मण्डली म दश के बहुत से प्रसिद्ध पण्डित है तथा तीन को तो भारत सरकार द्वारा महामहोपाध्याय का सम्मान भी प्राप्त हो चुका है।

मेरा जन्म जयपुर मे ही हुआ और मैंने महाराजा कालज म शिक्षा पाई। स्कूल और कालेज की सभी कक्षाओ मे मैं सर्वोच्च स्थान एव पारि-तोषिक पाता रहा।

मैंने माध्यमिक परीक्षा 1897 ई मे द्वितीय श्रेणी म उत्तीर्ण की

सन 1899 ई मे मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एटेंस परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की और विश्वविद्यालय की इस परीक्षा के वरिष्ठता क्रम मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। जयपुर राज्य म शिक्षा के इतिहास मे यह एक अभूतपूर्व अवसर था। अत महाराजा साहिब बहादुर की ओर से सार्वजनिक शिक्षा विभाग द्वारा मुझे स्वर्णपदक प्रदान किया गया। साथ ही, मैंने उसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय से मट्रिक परीक्षा भी प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की। 1901 ई म मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम वर्ष कला-परीक्षा मे द्वितीय श्रेणी प्राप्त करके उत्तीर्ण हुआ। इस परीक्षा म अंग्रेजी के अतिरिक्त मेरे विषय तर्क शास्त्र, ग्रीक और रोमन इतिहास भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, संस्कृत और सामान्य एव उच्चतर गणित रहे थे। इसके साथ ही मैंने हिन्दी म मौलिक रचना प्रस्तुत कर के वैकल्पिक परीक्षा म सफलता प्राप्त की। मेरे एक प्राचार्य द्वारा मेरे नाम लिखे गए पत्र के उद्धरण से ज्ञात होगा कि मैंने कलकत्ता के सभी परीक्षार्थियो मे अंग्रेजी गद्य लेखन म द्वितीय स्थान प्राप्त किया था।

विद्यार्थी अवस्था म ही स्वर्गीय कनल स्विन्टन जैकब और कैप्टन ए एफ गरट, आर ई एम ने मुझे जयपुरस्थ ज्योतिष यन्त्रालय के जीर्णोद्धार के निमित्त सहायक के रूप मे चुन लिया था। इस कठिन एव मौलिक काम म मैंने जो सहायता की उसम मेरी सफलता को प्रमाणित करते हुए राज्य की ओर से मुझे 200 रु का पारितोषिक प्रदान किया गया। इसके लिए उपरिलिखित दोनो महानुभावो ने जो सलग्न प्रमाणपत्र प्रदान किए हैं, वे साक्षीभूत ह।

अंग्रेजी मानसिक एव नतिक विज्ञान और संस्कृत विषय लकर मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1903 ई म बी ए परीक्षा पास की और विश्वविद्यालय के सफल परीक्षार्थियो म सवप्रथम स्थान प्राप्त किया। जयपुर के महाराजा कालज अथवा राजपूताना के किसी भी कालज म कोई भी परीक्षार्थी अब तक ऐसी सफलता प्राप्त नहीं कर सका था। अत इन शिक्षालयो के इतिहास मे यह एक अभूतपूर्व घटना थी। राज्य की ओर से मुझे पुन स्वर्णपदक और 300 रु. के मूल्य की पुस्तकें प्रदान करके पुरस्कृत किया गया। उस वर्ष का सवश्रेष्ठ विद्यार्थी होने के नाते मैंने नायब्रुक स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया।

मनोविज्ञान एव वक्तव्य शास्त्र विषय ले कर मैंने एम ए उपाधि के लिए परीक्षा के निमित्त आवश्यकता से भी अधिक अध्ययन किया पर मुझे स्वास्थ्य की गड़बड़ी ने मुझे परीक्षा मे बैठने का अवसर नहीं दिया।

संस्कृत के विश्रुत विद्वान अपने पिता जी से कई वर्षों तक स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने का असाधारण सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मैं संस्कृत बहुत अच्छी तरह जानता हूं और उच्चतर एवं मौलिक शोध को लक्ष्य में रखकर मैंने वैदिक पौराणिक साहित्यिक एवं वेदान्त विषयक संस्कृत साहित्य के अंगों का विशिष्ट अध्ययन किया है। मैंने संस्कृत का आरम्भिक अध्ययन प्राचीन पद्धति से किया जो बहुत ठोस होता है। अंग्रेजी शिक्षा ने मुझे वह कसौटी प्रदान कर दी है जिसका कि पाश्चात्य विद्वान प्राचीन भाषा में संशोधन के उद्देश्य के लिए प्रयोग करते हैं।

मैंने इण्डियन एण्टीक्वेरी एवं अन्य संस्कृत और हिन्दी सावधिक पत्र पत्रिकाओं को बहुत से विद्वत्तापूर्ण लेखों द्वारा योगदान दिया है। इण्डियन एण्टीक्वेरी में प्रकाशित मेरे लेखों की विशिष्ट प्राच्य विद्याविदों ने प्रशंसा की है। जब महामहिम ब्रिटिश सम्राट भारत आए तो मैंने उनके लिए संस्कृत में स्वागतगान की रचना की। सुप्रसिद्ध उच्च विद्वान् डा कलेण्ड (उट्रेच निवासी) ने एतन्निमित्त मेरी बहुत प्रशंसा की। मैंने कतिपय अद्या-वधि अप्रकाशित संस्कृत ग्रंथों की समीक्षा एवं व्याख्यात्मक प्रस्तावना और टिप्पणियों सहित सम्पादन कार्य भी हाथ में लिया है।

जयपुर राज्य द्वारा संचालित संस्कृतोपाधि की परीक्षाओं में मैं साहित्य धर्मशास्त्र और व्याकरण विषयों का परीक्षक होता हूं तथा राज-पूताना मिडिल स्कूल और जयपुर मिडिल स्कूल परीक्षाओं में भी मुझे परीक्षक नियुक्त किया जाता है।

सन 1904 ई में कर्नल टी सी, पीयर्स आई ए तत्कालीन रेजी-डेन्ट जयपुर की सहमति से मुझे खेतड़ी के अल्पवयस्क राजा का अभिभावक नियुक्त किया गया। पीयर्स साहब का कश्मीर से लिखा हुआ प्रशंसापत्र इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि मेरी कार्यप्रणाली के विषय में उनके मन में कैसी धारणा थी।

जब जयपुर दरबार ने मेयो कालेज अजमेर के मोतमिद (रियासत के सामन्तों और प्रशिक्षणार्थियों के अभिभावक) पद का स्तर ऊंचा करने का निर्णय किया तो 1907 ई में इस पद के लिए मुझे चुना गया। यह चुनाव करते समय रियासत की स्टेट कौंसिल के सचिव ने रेजीडेन्ट जयपुर के नाम यह पत्र लिखा था —

संख्या 2254
जयपुर दिनांक 21 अक्टो॰ 1916

मेयो कालेज के मोतमिद पद पर किसी अधिक योग्य व्यक्ति की नियुक्ति कर के उसका स्तर बढ़ाने का प्रश्न कुछ समय से जयपुर दरबार के विचाराधीन है। अब कौंसिल ने राजा जो खेतड़ी के शिक्षक पं॰ चन्द्रधर गुलेरी बी॰ ए॰ को लाला मिट्ठन लाल के स्थान पर मेयो कालेज के मोतमिद पद को ग्रहण करने के लिए चुना है। पं॰ चन्द्रधर गुलेरी एक बहुत ही योग्य व्यक्ति हैं और उन्होंने अपने कर्त्तव्यों का सम्यक पालन करते हुए प्रिंसिपल मेयो कालेज को सर्व सन्तुष्ट किया है और अब तक इस संस्था का बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया है अतः कौंसिल को विश्वास है कि इनकी नियुक्ति के विषय में प्रिंसिपल मेयो कालेज, अजमेर की सहमति प्राप्त हो जायेगी।

मेयो कालेज में लगभग 15 वर्ष के बहुत लम्बे समय तक मैं विविध श्रेणियों को अवैतनिक रूप से विभिन्न विषय पढ़ाता रहा हूं तदनन्तर सन् 1916 में मुझे महामहोपाध्याय पं॰ शिवनारायण के स्थान पर हैड पंडित, मेयो कालेज के पद पर नियुक्ति के लिए चुना गया और हिन्दी व संस्कृत का अध्यापन कार्य मुझे सौंपा गया। कक्षा में, छात्रावास में क्रीडाक्षेत्र में अपने विद्यार्थियों के मानसिक नैतिक बौद्धिक और शारीरिक विकास की दिशा में मैंने जिस परिमाण में और जिस स्तर पर कार्य किया है, उसके विषय में प्रिंसिपल महोदय ही अपना मत दे सकते हैं कि वह उनके मनोनुकूल है या नहीं।

मैंने प्राचीन एवं आधुनिक गद्य तथा पद्यात्मक हिन्दी साहित्य का विशिष्ट अध्ययन किया है और पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से इसके विकास के सम्बन्ध में भी अनुशीलन किया है। इतिहास और पुरातत्व विषयों में मेरी अभिरुचि है और अपने नाम से बिना नाम के अथवा अन्य विद्वानों के साथ जो लेखादि प्रकाशित किए हैं वे सब निवेदित हैं।

मैं हिन्दी का प्रसिद्ध लेखक हूं और साहित्यिक जगत में आलोचक और विद्वान के रूप में मेरी ख्याति है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की प्रबन्धकारिणी परिषद् का मैं कई वर्षों तक सदस्य रहा हूं।

जयपुर के रेजीडण्ट कर्नल शावर्स द्वारा लिखित 'नोटस ऑन जयपुर' पुस्तक में मेरा यथेष्ट योगदान है। युद्ध काल में मैंने सम्राट की सेनाओं की

विजय के सम्बन्ध मे एक सस्कृत प्रार्थना लिखी थी जो प्रतिदिन विद्यालयो म दोहराई जाती थी। युद्ध काल म प्रिंसिपल मेयोकालेज पब्लिसिटी बोर्ड, अजमेर-मेरवाडा के अध्यक्ष भी थे। मैंने अजमेर-मेरवाड वार गजट के हिन्दी सस्करण के सम्पादन म अकेले ही उनकी सहायता की थी और साथ ही अंग्रेजी सस्करण मे भी लेख लिखता था। अजमेर-मेरवाडा वार गजट के हिन्दी सस्करण की शैली और साहित्यिक स्तर का अपेक्षाकृत अधिक समादर था।

हस्ताक्षर

जुलाई 8, 1917 (चन्द्रधर गुलेरी)

Guleriji in his own words

I belong to a respectable family of Saraswat Brahmanas residing in the village of Gulair District Kangra the Punjab. My great grandfather's reputations as an astronomer and author of the Hindu Almanac extended in his days as far as Patiala and Banaras. Our family holds land in muafi and in gagir and we are chief priests and preceptors (Gurus) to the historic house of Katoch Kshatriyas (Rajputs) of Gulair. My father was given the honour of a polanquin gaddi and tazim by the Raja of Gulair as his Guru and the same has been conferred upon me.

My father Pandit Shivramaji—One of the best Sanskrit scholars of his time at Banaras—was selected by the late Maharaja Sawai Ramsinghji Bahadur of Jaipur to be his Court Pandit. He was senior Pandit to the Jaipur Durbar and Vice Principal and Professor of Sanskrit Grammar Philology and Vedanta philosophy at the Sanskrit College Jaipur for about 48 years and was respected and honoured by the present as well as the late Maharaja and all sections of the community for his vast learning and piety of character. He was the pioneer of Sanskrit studies in Jaipur and counted a large number of well known pandits as his pupils three of whom were honoured by the Government of India with the title of Mahamahopadhyaya.

I was born at Jaipur and was educated at the Maharaja s College where at school and college I was always the head of the class and won first prizes

I passed the Middle Examination in the Second Division in 1897 In 1899 I passed the Entrance Exami nation of the Allahabad University in the First Division standing first in order of merit in the whole University as a result quite unprecedented in the history of Education in the Jaipur State for which I was awarded a gold medal by His Highness the Maharaja Sahib Bahadur through the Department of public Instruction I matriculated at the Calcutta University also in the same year in the First Division

I passed the First Arts Examination of the Culcutta University in 1901 in the Second Division Besides English my subjects were Logic Greek and Roman His tory Physics Chemistry Sanskrit ordinary and Higher Mathematics I also passed in the optional paper on Original Composition in Hindi An extract from a letter from one of my professors attached herewith would show that I occupied second place among all the students of Culcutta Colleges in English prose

While yet a student I was selected to assist the late Col Sir Swinton Jacob and Captain A Garrette R E M in the repairs and restoration of the old Astrono mical observatory at Jaipur The success achieved in the difficult and original work required of me there was recognized by a reward of Rs 200/- from the State as is evident from the testimonials of both the gentlemen attached hereto

I graduated at the Allahabad University in 1903 with English Mental and Moral Science and Sanskrit as my subjects heading the list of all the successful candi dates at the University - a result unknown in the History of the Maharaja s College Jaipur or of any Rajputana College I was again awarded a gold medal and books all worth Rs 300/- by the State I also won the North

brook Medal of the Jaipur College being the best student of the year

I took up Mental and Moral Philosophy for my M A degree and read more of the Subject than the examination required but was prevented from appearing at the Examination by ill health

I had the rare good fortune of having such a distinguished Sanskrit scholar as my father and teacher and studied Sanskrit independently for a number of years under him I know Sanskrit thoroughly well and have specially studied the Vedic Epic Classic and Philosophical literature of the language with a view to higher and original research My early studies in Sanskrit were according to the old School which goes for depth and my English education has supplied me the apparatus with which Western scholars utilise the ancient language for purposes of research

I have contributed scholarly articles to Sanskrit and Hindi periodicals and to the *Indian Antiquary* My contribution to the last named journal have been appreciated by eminent orientalists I composed Sanskrit verses in honour of His Most Gracious Majesty the king Emperor s visit to India and was complimented thereon by the eminent Dutch Scholar Dr Caland of Utrecht I have undertaken the editing of some unpublished Sanskrit works with critical and exegetical introduction and notes

I am an examiner in Sahitya Dharmasastra and Vyakarana for the Sanskrit Titles Examinations of Jaipur State and for the Rajputana Middle School and Jaipur State Middle School Examinations

In 1904 I was selected with the approval of Col T C Pears I A then Resident at Jaipur to be guardian to the Minor Raja of Khetri and his testimonial from Kashmir would show the opinion he had as regards the way in which I discharged my duties

When the Jaipur Durbar decided to raise the status of the Raj Motamid at (Guardian to State Nobles and Cadets) the Mayo College Ajmer they selected me for the post in 1907 In making this selection the Secretary State Council wrote as follows to the Resident Jaipur

No 2254

Dated Jaipur the 21st October 1916

* * * * the question of raising the status of the Raj Motamid at the Mayo College by appointing a better qualified man has been under the consideration of the Durbar for some time The Council has now selected Pandit Chandra Dhar Guleri B A Tutor to the Rajaji of Khetri to succeed Lala Mithalal as Motamid of the Mayo College Pandit Chandra Dhar is a well qualified man who has always given satisfaction to the Principal Mayo College in the proper discharge of the duties entrusted to him and has now gained considerable experience in the Institution The Council therefore trust that his selection will meet with the approval of the Principal Mayo College Ajmer

During the course of my stay of about 15 years at the Mayo (Chiefs) College I have been almost regularly taking classes in various subjects (honorarily for a long time) Then in 1916 I was selected to succeed Maha mahopadhyaya Pandit Shivanarayan as Head Pandit Mayo College and take Sanskrit and Hindi classes As to the quality and quantity of the work I have done here in the class room or the Boarding House or the play-ground to assist the mental moral intellectual and physical development of my charges it is for the principal to say whether my services to the College have deserved his approbation

I have specially studied Hindi Literature both ancient and modern prose and poetry and in relation to its development from Pali Prakrit and apabhransa dialects I am interested in history and archaeology and my contri

butions whether in my own name or without name and in collaboration with others are well known

I am a well known writer of Hindi and am recog nised as a critic and scholar by the Hindi literary world For years I have been on the Managing Council of the Nagari Pracharini Sabha of Benares

I assisted Col Showers Resident of Jaipur by contributing to his Notes on Jaipur

During the war I composed a Sanskrit prayer for the victory of the King Emperor s arms which was offered in many schools day by day I assisted the Principal of my college as President of the Publicity Board Ajmer-Merwara and editor Ajmer Merwara War Gazette by writing almost singlehanded the Hindi Edition of the journal in addition to contributing to the English issue The style and literary merits to the Ajmer Merwara war Gazette in Hindi were favourably commented on

Sd/-

July 8th 1917 (Chandra Dhar Guleri)

स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अन्तिम क्षण

पूज्य पिता जी (स्वर्गीय पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी) बडे ही सुगठित व स्वस्थ थ। देहावसान के पूव वे और भी तन्दुरुस्त थे। उन्हे कुछ माह पहले पीलिया हो चुका था। तब वे बहुत ही कमजोर हो गये थे। उसके बाद उन्होने बडी ही तेजी से स्वास्थ्य लाभ किया था। गर्मियो की छुटियो मे काशी से जयपुर गए थे और वहा से मेरे बडे चाचा की मृत्यु का महान दु ख लेकर लौटे थे। पिता जी प्राय कहा करते थे—' अब मेरा जीना और स्वस्थ रहना और भी जरूरी है। क्षेम (मेरे मध्यम पितृव्यका एक मात्र पुत्र) व मध्यमा (बडी चाची) का अब कौन है ?

पिताजी के देहावसान के ठीक सोलह दिन पहले काशी मे, अपने पीहर मे, मेरी छोटी चाची का स्वगवास हो गया। मैं तब सेन्ट्रल हिन्दू-स्कूल मे पढता था। पिता जी स्वय स्कूल आए और मुझे घर ले गए। घर लाकर धोती पहनाई और नगे सिर नगे पैर अपने साथ श्मशान ले गए। वह मानो रिहसल थी। आज भी वह दृश्य मेरी आखो के सामने है। पिताजी के कई चित्र मेरे मानस मे स्पष्टत अकित हैं। उन चित्रो मे कम-काण्ड मे दक्ष भावुक व कोमल हृदय पिताजी का स्मृति चित्र बहुत ही गहरा अकित है। मैं श्मशान मे पहली बार ही गया था। केवल आधी धोती पहने व आधी ओढे नगे सिर और नगे पैर पिता जी खडे थे। मेरा हाथ पकड रखा था। उनके नेत्र न जाने क्या देख रहे थे। दूर, बहुत दूर, खोए-से वे देख रहे थे गगा जी की बहती धारा का। गुरु जी का वे इसी चाची के विवाह के सस्मरण सुना रहे थ, तभी मैंने कहा था— 'बडा भाउ (अपने चाचाओ की तरह मैं भी उन्हे यही कहता था) बडी प्याम लगी है।" उन्होन सुना नही। मैंने दुबारा कहा। गुरुजी ने कहा— 'अभी ठहरो" पर इस बार पिता जी न सुन लिया था। व मेरा हाथ पकडे

सीढ़ियां उतरने लगे और गंगा जी के प्रवाह वाली सीढ़ी तक उतरकर बोले झुककर गाय की तरह पानी पी ले। हाथ से मत पीना।" मैंने भर पेट जल पीया और उनके साथ जहां गुरु जी आदि खड़े थे, आ गया। तर्पण करते आज भी मुझे उनका वह जल पिलाना याद आ जाता है।

चाची जी के उत्तर-कृत्य के दिनों में भेलूपुरा से विश्वविद्यालय प्रायः 3-4 मील नित्य नंगे सिर और नंगे पैर पैदल जाते और कड़कड़ाती धूप में दोपहर में वापस आते। भोजन का यह हाल था कि बिना छौंका खाना, एक ही बार खाते। लिखने का काम अधिक करके वे मानसिक दुःख को कम किया करते थे, अतः उन दिनों वे बहुत लिखते थे। इससे स्वास्थ्य कुछ अच्छा होता प्रतीत हुआ। अपने स्वस्थ शरीर को दिखा करके माता जी को चुप करा देते थे। कौन जानता था कि दीपक बुझने से पहले तेजी से जल रहा है।

चाची के देहावसान के तेरहवें दिन सायं को काशी नागरी प्रचारिणी सभा में मीटिंग थी। मैं साथ गया था। सभा की या अन्य मीटिंगों में प्रायः 2-3 घंटे चुप बैठे रहना पड़ता था। फिर भी मैं साथ जाता था। पिताजी सदा मीटिंगों के पहले या बाद में मुझे बातें करने का अवसर देते थे। इसमें मुझे इतना रस आता था कि सदा हठ करके उनके साथ जाता। उस दिन सभासद ने मीटिंग के बाद बातचीत में अंग्रेजी में कुछ कहा था। तुरन्त ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी में ही उन्हें बोलने की राय दी। वे सज्जन कुछ चिढ़ गए और बोले कि कई भाव हिन्दी में व्यक्त ही नहीं हो सकते। आचार्य शुक्ल कुछ कहें, इससे पहले ही उक्त सज्जन के गुट के एक और सभासद ने उनका समर्थन करना शुरू किया और कहा—'बताइए हिन्दी में पत्नी को क्या लिखेंगे। मां को प्रणाम, बच्चों को प्यार पत्नी को क्या ?' आचार्य शुक्ल चुप बैठे कुछ सोच में पड़ गए। अन्य महारथी भी सन्नाटे में आ गए। तब पिता जी ने हंस कर कहा "बोला (मेरा प्यार का नाम) तू बतला। मण्डन मिश्र के घर के तोते जैसे वेदपाठ करते थे ठीक उसी तरह मैंने कहा— मां को प्रणाम बच्चों को प्यार और पत्नी को श्रद्धा।' कहना न होगा कि जब पिता जी बाहर से पत्र भेजते थे, तो लिखते थे—"तुम्हारी दादी जी को मेरा प्रणाम तुम भाई बहनों को प्यार-आशीष, तुम्हारी मां को श्रद्धा।"

सभा मीटिंग में वे कभी भी पान नहीं खाते थे। वहां के चौकीदार का लाया जल तक नहीं पीते थे। मैं पान भी खा लेता था और जल भी पी लेता था। एक बार श्रद्धेय बाबू श्यामसुन्दर दास जी के पूछने पर पिता जी ने कहा था— मैं सभा को बेटी मानता हूं। बेटी के यहाँ का जल मैं नहीं पी सकता। यह बहन के यहां खा पी सकता है।" उस दिन सभा से लौटते समय

हमारे गोदोलिया पहुंचते-पहुंचते बड़ी ज़ोर की वर्षा आ गई। तांगे में मैं और पिता जी पीछे बैठे थे और श्रद्धेय बाबू श्यामसुन्दर जी आगे। बाबू जी भी भेलपुरा आए थे, खूब ही भीगे। घर आकर मुझे कुनैन की गोली खिलाई और खुद स्नान करके सध्या करने बैठ गए। उसी रात को ज्वर आया। शीत लगा था कुछ जुकाम भी था। सवेरे मां ने डाक्टर साहब को बुलवा भेजा। पर उनके आने से पहले वे स्नान पूजन कर चुके थे और मैं स्कूल चला गया था। डाक्टर साहब ने मलेरिया बताया था और क्लोरिन मिक्सचर तजवीज किया। दिन भर उन्हें तेज बुखार रहा। सायंकाल छोटे चाचा जी लायलपुर से आए। पिता जी ने उनसे कहा था, 'तू आ गया, मैं बेफिक्र हुआ।' रात को प्राय आठ बजे ज्वर का वेग कम होना शुरू हुआ। मुझे आवाज देकर बोले— "गोखेल ला।" जिन दिनों उन्हें पीलिया हुआ था मैं उन्हें अखबार पढ़ कर सुनाता था। अंग्रेजी में गोखले को 'गोखेल' भी पढ़ा जा सकता है। मैंने यही भूल की थी। तब से वे 'गोखेल' शब्द अखबार के अर्थ में मुझसे प्रयुक्त किया करते थे। तभी से पिता जी नित्य अखबारों में लाल पैंसिल से 1-2 स्थलों पर निशान लगा रखते थे और मैं उन्हें वो स्थल पढ़कर रात को सुनाया करता था।

आचार्य शुक्ल, बाबू श्याम सुन्दरदास जी आदि पिताजी के कई मित्रों ने रात को अखबार सुनने के समय में आ कर या रहकर मेरा अखबार पढ़ना सुना था। समय पर सब काम करने वाले पिता जी कोई भी क्यों न बैठा हो मेरे उस आध घंटे को किसी को भी हड़पने नहीं देते थे। महामना मालवीय जी प्राय हमारे यहां आते थे। एक दिन वे किसी मीटिंग से विश्व-विद्यालय जाते समय रात को 9 बजे आये थे। मैं अखबार सुनाने ही लगा था कि उठकर जाने लगे पर पिता जी ने 'गोखेल' का अर्थ मालवीय महाराज को कह सुनाया और मुझे पढ़ने को कहा। उनके सामने भी वे अखबार सुनते रहे और उच्चारण व अर्थ मुझे बताते रहे।

मुझे याद है कि उस दिन एक स्थल स्वयं मालवीय जी के बारे का ही मैंने पढ़ा था। जब मैं सब अंकित स्थल पढ़कर जाने लगा तो मालवीय जी ने अखबार उठाकर उसमें छपी एक कविता मुझसे पढ़कर सुनाने को कहा और सुनकर मेरी पीठ ठोकी।

उस रात ज्वर कम रहा। नींद भी उन्हें अच्छी आई। डाक्टर साहब ने कुनैन दी थी। दूसरे दिन प्रात ग्यारह बजे से ज्वर फिर तेज होना शुरू हो गया था और शाम तक 104° तक जाकर फिर उतरना शुरू हुआ। तीसरे

दिन प्रात ताप क्रम फिर नामल था। डाक्टर साहब ने कुनन की मात्रा दुगुनी कर दी। हम सब बेफिक्र थे। उस दिन बारह बजे दोपहर तक तापमान 105° पर पहुँच गया। स्कूल से लौटते ही मैं डाक्टर साहब के यहा भागा। चौमुहानी पर कोई भी इक्का न था। दूसरी ओर की चौमुहानी पर सवारी के लिए जाने के बजाए मैंने पैदल ही दौड़ लगाई। डाक्टर अमरनाथ जी हमारे पारिवारिक चिकित्सक थे। उनका स्थान डढ मील दूर था। कड़कडाती धूप मे मैं सरपट दौड़ा जा रहा था कि उधर स डाक्टर साहब कार से आते दिखाई दिए। मेर इशारे पर कार रुक गई। डाक्टर साहब बाबू शिवप्रसाद गुप्त के साथ कही जा रह थ। शाम को लौट आन की बात थी। शाम देखने का वचन द वे कुनैन मिक्चर ब द कर पुन क्लोरिन मिक्चर पिलाना शुरू कर देन को कह मुय लेकर रवाना हुए। चौमुहानी पर मुझे उतार दिया। मैं सोच ही रहा था क्या करू कि विश्वविद्यालय से लौटते हुए श्रद्धेय बाबू और ओरियन्टल कालेज के कविराज धर्मदास जी व कई अन्य प्रोफेसर मुझे मिल गए। उनम एक ज्योतिष के प्रोफेसर थे। मैं सबको साथ लकर आया। देखा पिता जी ठीक है। प्रलाप नही है—तापमान भी कम है। 'यह पागल व्यर्थ ही आप लोगो को खीच लाया। कुछ नही है चिन्ता की कोई बात नही है। अब आप जाइए भोजन म विलम्ब होगा।' कह कर पिता जी ने सबको थोड़ी देर मे बिदा कर दिया। कविराज धर्मदास जी ने भी नब्ज देखकर यही कहा। जब सब लोग जा रहे थे, तो माँ ने मेरे हाथ पिता जी का वर्षफल ज्योतिष के प्रोफेसर साहब को देखने को भेजा। पिता जी की बैठक म उन्होने उसे देखा था। उनका कहना था कि कुछ नही, किसी ग्रह का कोई दोष नही है, घबराइए मत।

सबको विदा करके जब मैं पिता जी के पास आया, तो मेरा हाथ पकड़कर बोले—'बेचारे युनिवर्सिटी से भूखे प्यासे जा रहे थे व्यर्थ ही पकड़ लाया। दिखा लिया वर्षफल, घबराता क्या है बेटा तुझे जल्दी ही टेबुल मिलेगी।'

हटिए'—कहकर मैं बांह छुड़ाकर कर भागा। बात को स्पष्ट कर द। अजमेर म कई वर्ष पहले जब पिता जी मेयो कालेज मे हैड पण्डित नही हुए थे तब हम जयपुर हाउस के पास ही एक छोटे से किराए के मकान म रहते थ। मेरी दादी जी के पेट मे वायु-गोला था और एक कमरा उन्होने ल रखा था जिसमे उनका तुलसी का गमला रहता था, वे दिन मे लेटती तो थी नही, सो वह कमरा बेकार ही पड़ा रहता था। घर मे कोई टेबुल न थी। मैं चाहता था कि दादी जी का गमला पूजा के कमरे म रख दिया जाये और वह कमरा मुझे मिल जाए। एक टेबुल-कुर्सी मिले और वह मेरा पढने का

कमरा बना दिया जाय। संसार की सब चाहों से बढ़कर मेरी यह चाह थी। पिता जी से कहा तो मजाक में टाल गए। टेबुल कुर्सी वे मँगाकर दे सकते थे पर कमरा कहा से देते। मैंने दादी जी से कहा और वह मान गई। कमरा मुझे मिल गया। मेज कुर्सी के लिए पिता जी को फिर कहा, पर वे आई नहीं। मैंने एक दिन दृढ़तापूर्वक कहा 'मैं जयपुर हाउस से आपकी टेबुल कुर्सी उठवा लाऊँगा, आप और मँगवा लेना।' आग की कहानी नाम छिपाकर कहनी होगी। राजपूताने की एक रियासत के महाराजकुमार पिताजी के छात्र थे। वे अधेड़ हो चले थे पर उनके पिताजी मरने का नाम ही न लेते थे। महाराज कुमार ने एक तान्त्रिक से एक अनुष्ठान करवाया था जिससे उनके पिता जी जल्दी ही इस लोक से कूच कर जाएं। अनुष्ठान जल में अहोरात्रि चालीस दिन खड़े होकर करना था। पिता जी ने हँसते-हँसते कहा 'तान्त्रिक को ब्राण्डी पिलाते रहना, अन्यथा तुम्हारे पिता जी जो मरेंगे तब मरेंगे, शीत में वह तान्त्रिक बेचारा जरूर मर जाएगा और अगर ज्यादा पिला दोगे और वह बाकने लगा तो तुम मरोगे।' कई दिन तक पुत्र की गद्दी की लालसा की यह कथा हमारे घर में चलती रही थी। कोठरी से टेबुल उठवा लाने की बात पर हँसकर पिता जी ने कहा था 'तू भी महाराज कुमार है क्या? बेटा मैं तो खुद जल्दी ही तुझे टेबुल दे दूँगा।

यद्यपि इसके दूसरे ही दिन मेरे लिए टेबुल कुर्सी उन्होंने मँगवा दी, पर टेबुल की छेड़खानी उन्होंने नहीं छोड़ी। टेबुल को उन्होंने उत्तराधिकार का पर्यायवाची बना दिया था। घर के सब लोग इस शब्द के इस अर्थ को समझते थे और मैं चिढ़ता था।

उस समय दोपहर के दो बजे थे। मैंने जाकर माँ से कहा कि बड़ा भाऊ कहते हैं 'तुझे टेबल मिलेगी, घबराना मत'। उन दिनों रात को पिता जी प्राय परलोक की बातें किया करते थे। चाची के देहावसान के बाद मरणोत्तर जीवन ही उनका रात को पारिवारिक बात-चीत का विषय बन गया था। जब माँ खीझ उठती थी, तब कहीं जाकर विषय बदलता था। मेरी शिकायत सुन वे सक्रोध उठीं और मेरे साथ पिता जी के पास आईं। पिता जी ने माँ को और कुढ़ाया। बोले 'ज्योतिषी जी को योगेश्वर का जन्मपत्र क्या नहीं दिखाया? अपना भी दिखाना था। जब तक पुत्र का राजयोग और स्त्री को वैधव्य-योग व स्वयं को मारक योग न हो, मृत्यु नहीं मिला करती।' इस परिहास के बाद माँ क्या कहती?

एक दिन माता जी ने कोई दु:स्वप्न देखा और पिता जी से जाकर कहा—'गाय मगवाती हूं संकल्प कर दीजिए।' हंसकर पिताजी ने कहा, 'टबुल लेगा, वह गाय देगा।' माता जी चिढ़कर उठकर कमरे से चली गईं।

मा ने मुझे डाक्टर अमरनाथ के यहा भेजा। वे लौटे न थे। मा की सतम मुखमुद्रा की याद करके मैं बिना डाक्टर साहब को लिये लौटना नही चाहता था। डाक्टर साहब न जाने कब आवें यह सोच मैं सिविल सर्जन के पास जा पहुंचा। अंग्रेजी बोलकर उसे साथ ले आया। उसने भी मलेरिया ही बताया और क्लोरीन मिक्सचर जारी रखने को कहा। रात के दस बजे न छोटे चाचा जी आए थे और न डाक्टर अमरनाथ। मा खुद बड़ी बहन को लेकर तांगा करके बाबू जी के गई। वे घर पर न थे। श्रद्धेय आचार्य शुक्लजी ने तत्क्षण बगाली टोला के एक प्रसिद्ध डाक्टर को उनके साथ भेजा व थोड़ी देर बाद अपने पुत्रों सहित स्वयं भी आ गए। इन डाक्टर साहिब ने भी मलेरिया ही बताया पर कहा अब ब्रेन फीवर भी हो गया है। डाक्टर की मुद्रा देख बड़ी बहन ने मुझे अलग ले जाकर कहा 'यह डाक्टर बुरा मानेगा, सो चुपचाप भाग जा और सिविल सर्जन को ले आ। वे न मिलें, तो जो भी डाक्टर मिले जितने ला सके, ले आ। मुन्नू जल्दी कर।'

बाहर आते ही मुझे तांगा मिल गया। रात के बारह बजे उन नीरव सड़कों पर तांगा दौड़ रहा था और मैं सोच रहा था कि बड़े भाऊ से कल कहूंगा कि मैं ऐसे गया यह किया वह किया। अब की बार आकर परीक्षा के बाद सिविल सर्जन भी गम्भीर हो गया। तापमान 107° था। दोनों डाक्टरों ने ज्वर कम करने के लिए फौरन तय करके बर्फ पर लिटाने की राय दी। प्रलाप चल रहा था। 'राजतिकमल ' आदि। बाद में विजय चन्द्र जी वेदपाठि ने (जो क्वींस कालेज में कर्मकाण्ड व वेद के प्रोफेसर व पिता जी के शिष्य थे) रात के दो बजे इन्हीं शब्दों को सुनकर कहा था— 'ये शतपथ ब्राह्मण पर एक जर्मन विद्वान की टीका का खण्डन कर रहे हैं। मुझसे पिछले सप्ताह इस बारे में बातें हुई थीं।''

मैं और नौकर तांगा लेकर बर्फ लाने दौड़े। कहीं न मिलती देख बर्फखाने गये और दो मन की दो सिल्लो उठा लाए। पिता जी को उन सिल्लियों पर लिटाया गया। फिर जब तौलिए से पोंछ कर बिस्तर पर लिटाने लगे तो वे होश में आ गए थे। 'हटो' कह कर हम सब को दूर किया और एक झटके के साथ पास पड़े कुशासन पर जा बैठे। 'विजयचन्द्र जी गीता सुनाओ।' कह कर वे वहीं लेट गए। विजय चन्द्र जी चुप रहे। पर फिर एक डांट खाकर रोती आवाज में उन्होंने

विराट रूप दशन का पाठ शुरू किया। थोडी देर बाद पिताजी बोल, "विजया (मेरी बडी बहन) रुद्राक्ष ला।" बडी बहन माला उठा लाई। पिता जी ग्रं तम बार हँसे, बाले—"योगा, मेरे कैशबक्स म विना बिधे रुद्राक्ष हैं। सिरहाने से चाबी ले ले।" मैं निकाल कर लाया और विजय चन्द्र जी न उनके इशारे पर वह उनकी चोटी मे बाध दिया। इसके बाद बहन ने टैंपरचर लिया, 109° डिग्री से ऊपर था। फिर वे कुछ देर निश्चेष्ट स पडे रह। तत्पश्चात् उन्होने आखें खोल दी। बाहर अनेक लाग आ गए थे। गऊ दान हुआ, स्वण दिया गया और न जाने क्या-क्या हुआ। मेरी चेतना लुप्त सी हो चुकी थी। मैं सब देख रहा था, पर समझ कुछ भी न रहा था।

पिता जी न नेत्र बन्द कर लिए, विजय चन्द जी न झुककर पिता जी के कान के पास जार स कहा, "ओम नम शिवाय च। पिताजी न हिचकी ली और आखें सदा के लिए खोल दी। इस समय प्रात काल के चार बजे थ।

————

सुखमय जीवन

[१]

परीक्षा देने के पीछे और उसका फल निकलने के पहले के दिन किस बुरी तरह बीतते है यह उन्ही को मालूम है जिन्हे उन्हे गिनने का अनुभव हुआ है। सुबह उठते ही परीक्षा से आज तक कितने दिन गये यह गिनते हैं और फिर 'कहावती आठ हफ्ते' मे कितने दिन घटते है यह गिनते है। कभी-कभी उन आठ हफ्तो पर कितने दिन चढ गये यह भी गिनना पडता है। खाने बैठे हैं और डाकिये के पैर की आहट आयी—कलेजा मुंह को आया। मुहल्ले मे तार का चपरासी आया कि हाथ-पाँव काँपने लगे। न जागते चैन, न सोते—सुपने मे भी यह दिखता है कि परीक्षक साहब एक आठ हफ्ते की लम्बी छुरी लेकर छाती पर बैठे हुए है।

मेरा भी बुरा हाल था। एल-एल० बी० का फल अबकी और भी देर से निकलने को था—न मालूम क्या हो गया था या तो कोई परीक्षक मर गया था, या उसको प्लेग हो गया था। उसके पर्चे किसी दूसरे के पास भेजे जाने को थे। बार-बार यही सोचता था कि प्रश्नपत्रो की जाँच किये पीछे सारे परीक्षको और रजिस्ट्रारो को भले ही प्लेग हो जाय अभी तो दो हफ्ते माफ करें। नही तो परीक्षा के पहले ही उन सबको प्लेग क्यो न हो गया? रात-भर नीद नही आयी थी, सिर घूम रहा था अखबार पढने बैठा कि देखता क्या हू कि लिनोटाइप की मशीन ने चार-पाँच पक्तियाँ उलटी छाप दी हैं। बस अब नही सहा गया—सोचा कि घर से निकल चलो, बाहर ही कुछ जी बहलेगा। लोहे का घोडा उठाया कि चल दिये।

तीन-चार मील जाने पर शान्ति मिली। हरे-हरे खेतो की हवा कही पर चिडियो की चहचह और कहीं कुओ पर खेतो को सीचते हुए किसानो का

मरीला गाना, वही देवदार के पत्तों की सौंधी बास और वही उनम हवा का मी-सी रग्ग बजना—सबने मेरे चित्त को परीक्षा के भूत की सवारी में हटा लिया। बाइसिकिल भी गजब की चीज है। न दाना मांग, न पानी, चलाये जाइए जहाँ तक पैरों मे दम हो। सडक पर कोई था ही नही, कहीं कहीं किसानो के लडके और गाँव के कुत्ते पीछे लग जाते थे। मैंने बाइसिकिल को और भी हवा कर लिया। सोचा कि मेरे घर सितारपुर से पन्द्रह मील पर कालानगर है—वहाँ की मलाई की बरफ अच्छी होती है और वहीं मेरे मित्र रहते हैं, वे कुछ सनकी हैं। कहते हैं कि जिस पहले देख लेंगे उससे विवाह करेंगे। उनसे कोई विवाह की चर्चा करता है तो अपने सिद्धान्त के मण्डन का व्याख्यान देने लग जाते हैं। चलो, उन्हीं से सिर खाली करें।

खयाल पर-खयाल बधने लगा। उनके विवाह का इतिहास याद आया। उनके पिता कहते थे कि सेठ गनेशलाल की एकलौती बेटी से अबकी छुट्टियों में तुम्हारा ब्याह कर देंगे। पडोसी कहते थे कि सेठजी की लडकी कानी और मोटी है और आठ ही वर्ष की है। पिता कहते थे कि लोग जलकर ऐसी बातें उडाते हैं, और लडकी वैसी हो भी तो क्या सेठजी के कोई लडका है नहीं, बीस-तीस हजार का गहना देंगे। मित्र महाशय मेरे साथ-साथ पहले डिबेटिङ्ग क्लब में बाल-विवाह और माता पिता की जबरदस्ती पर इतने व्याख्यान झाड चुके थे कि अब मारे लज्जा के साथियों में मुँह नहीं दिखाते थे। क्योंकि पिताजी के सामने चीं करने की हिम्मत नहीं थी। व्यक्तिगत विचार से साधारण विचार उठने लगे। हिंदू समाज ही इतना सडा हुआ है कि हमारे उच्च विचार कुछ चल ही नहीं सकते। अकेला चना भाड नहीं फोड सकता। हमारे सद्विचार एक तरह के पशु हैं जिनकी बलि माता पिता की जिद और हठ की वेदी पर चढाई जाती है। भारत का उद्धार तब तक नहीं हो सकता—

फिससस! एकदम अर्श से फर्श पर गिर पडे। बाइसिकिल की फूँक निकल गयी। कभी गाडी नाव पर कभी नाव गाडी पर। पम्प साथ नहीं था और नीचे देखा तो जान पडा कि गाँव के लडकों ने सडक पर ही काँटों की बाड लगाई है। उन्हें भी दो गालियाँ दी पर उससे तो पङ्क्चर सुधरता नहीं। कहाँ तो भारत का उद्धार हो रहा था और कहाँ अब कालानगर तक इस चरखे का खैंच ले जाने की आपत्ति से कोई निस्तार नहीं दिखता। पास के मील के पत्थर पर देखा कि कालानगर यहाँ से सात मील है। दूसरे पत्थर के आते-आते मैं बेदम हो लिया था। धूप जेठ की और कंकरीली सडक जिसमें लदी हुई बैलगाडियों की मार से छः-छः इंच शक्कर की सी बारीक पिसी हुई सफेद पालिश चढ गयी। लाल मुँह को पोंछते-पोंछते रुमाल भीग गया और मेरा

गाग धाकार सभ्य विद्वान का-मा नहीं, वरन् सड़क कूटन वाले मजदूर का-मा हो गया। सवारियों ने हम लोग इतने गुलाम हो गये हैं कि दो तीन मील चलने ही छठी का दूध याद आने लगता है!

[२]

'बाबूजी, क्या बाइसिकिल म पङ्क्चर हो गया है ?'

एक तो चश्मा उस पर रेत की तह जमी हुई, उस पर ललाट मे टपकते हुए पसीने की बूँदें, गर्मी की चिढ़ और काली रात की-सी लम्बी सड़क—मैंने देखा ही नही था कि दानो ओर क्या है। यह शब्द सुनते ही सिर उठाया, तो देखा कि एक सोलह सत्रह वर्ष की कन्या सड़क के किनारे खड़ी है।

"हाँ हवा निकल गयी है और पङ्क्चर भी हो गया है। पम्प मेरे पास है नहीं। कालानगर कुछ बहुत दूर तो है ही नहीं—अभी जा पहुँचता हूँ।"

अन्त का वाक्य मैंने सिर्फ ऐंठ दिखाने के लिए कहा था। मेरा जी जानता था कि पाँच मील पाँच सौ मील के-से दिख रहे थे।

"इस सूरत से तो आप कालानगर क्या कलकत्ते पहुँच जायेंगे। जरा भीतर चलिए कुछ जल पीजिए। आपकी जीभ सूखकर तालू से चिपट गयी होगी। चाचाजी की बाइसिकिल म पम्प है और हमारा नौकर गोविन्द पङ्क्चर सुधारना भी जानता है।

'नहीं, नहीं—"

नहीं नहीं, क्या, हाँ, हाँ!'

यों कहकर बालिका ने मेरे हाथ से बाइसिकिल छीन ली और सड़क के एक तरफ हो ली। मैं भी उसके पीछे चला। देखा कि एक कँटीली बाड़ से घिरा बगीचा है जिसमें एक बँगला है। यहीं पर कोई 'चाचाजी' रहते होंगे परन्तु यह बालिका कैसी—

मैंने चश्मा रूमाल से पोंछा और उसका मुँह देखा। पारसी चाल की एक गुलाबी साड़ी के नीचे चिकने काले बालों से घिरा हुआ उसका मुखमण्डल दमकता था और उसकी आँखें मेरी ओर कुछ दया कुछ हँसी और कुछ विस्मय से देख रही थीं। बस पाठक! ऐसी आँखें मैंने कभी नहीं देखी थीं। मानो वे मेरे कलेजे को घोलकर पी गयी। एक अद्भुत कोमल शान्त ज्योति उनमे से निकल रही थी। कभी एक तीर से मारा जाना सुना है ? कभी एक निगाह में हृदय बेचना पढ़ा है। कभी तारामैत्रक और चक्षुमैत्री नाम आये

भोजन बनाती और कपडे सी लेती है, मैं उपनिषद् और योगवासिष्ठ का तजु मा पढा करता हूँ। स्कूल मे लडके बिगड जाते हैं, प्रबोध को इसी लिए घर पर पढाता हूँ।'

इतना परिचय दे चुकने पर वृद्ध ने श्वास लिया। मुझे भी इतना नान हुआ कि कमला के पिता मेरी जाति के ही हैं। जो कुछ उन्होने कहा था उसकी ओर मेरे कान नही थे—मेरे कान उधर थे, जिधर से माता को लेकर कमला आ रही थी।

आपका ग्रन्थ बडा ही अपूर्व है। दाम्पत्य सुख चाहने वालो के लिए लाख रुपये मे भी अनमोल है। धन्य है आपको! स्त्री को कैसे प्रसन्न रखना घर म कलह कैसे नही होने देना, बाल बच्चो को क्योकर सच्चरित्र बनाना इन सब बातो म आपके उपदेश पर चलने वाला पृथ्वी पर ही स्वर्ग सुख भोग सकता है। पहले कमला की मा और मेरी कभी-कभी खटपट हो जाया करती थी। उनके ख्याल अभी पुराने ढग के हैं। पर जबसे मैं रोज भोजन के पीछे उसे आध घटे तक आपकी पुस्तक का पाठ सुनाने लगा हू, तबसे हमारा जीवन हिण्डोले की तरह झूलते-झूलते बीतता है।"

मुझे कमला की मा पर दया आयी, जिसको वह कूडा-करकट रोज सुनना पडता होगा। मैंने सोचा कि हिन्दी के पत्र-सम्पादको मे यह बूढा क्यो न हुआ ? यदि होता तो आज मेरी तूती बोलने लगती।

'आपको गृहस्थ-जीवन का कितना अनुभव है! आप सब कुछ जानते हैं! भला इतना ज्ञान कभी पुस्तको से मिलता है ? कमला की माँ कहा करती थी कि आप केवल किताबो के कीडे हैं सुनी-सुनायी बातें लिख रहे हैं। मैं बार-बार यह कहता था कि इस पुस्तक के लिखने वाले को परिवार का खूब अनुभव है। धन्य है आपकी सहधर्मिणी! आपका और उसका जीवन कितने सुख से बीतता होगा! और जिन बालको के आप पिता हैं वे कैसे बडभागी है कि सदा आपकी शिक्षा मे रहते हैं, आप जैसे पिता का उदाहरण देखते है।"

कहावत है कि वेश्या अपनी अवस्था कम दिखाना चाहती है और साधु अपनी अवस्था अधिक दिखाना चाहता है। भला ग्रन्थकार का पद इन दोनो मे किसके समान है ? मेरे मन मे आयी कि कह दूँ कि अभी मेरा पचीसवा वर्ष चल रहा है कहा का अनुभव और कहा का परिवार। फिर सोचा कि ऐसा कहने से ही मैं वृद्ध महाशय की निगाहो से उतर जाऊँगा और कमला की माँ सच्ची हो जायगी कि बिना अनुभव के छोकरे ने गृहस्थ के कर्त्तव्य धर्मों पर पुस्तक लिख मारी है। यह सोचकर मैं मुसकरा दिया और

हैं ? मैंने एक सेकण्ड मे सोचा और निश्चय कर लिया कि ऐसी सुन्दर आँखें त्रिलोकी म न हागी और यदि किसी स्त्री की आँखो का प्रेमबुद्धि स कभी देखूँगा तो इन्ही को।

'आप सितारपुर स आये हैं। आपका नाम क्या है ?'

मैं जयदेवशरण वर्मा हू। आपके चाचाजी—"

ओ-हो बाबू जयदेवशरण वर्मा बी० ए०, जिन्होने सुखमयजीवन लिखा है ! मेरा बडा सौभाग्य है कि आपके दशन हुए ! मैंने आपकी पुस्तक पढी है और चाचाजी तो उसकी प्रशसा बिना किये एक दिन भी नही जाने देते। वे आपस मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे बिना भोजन किये आपको न जाने देंगे और आपके ग्र थ क पढने से हमारा परिवार-सुख कितना बढा है, इस पर कम-स-कम दो घट तक व्याख्यान देंगे।

स्त्री के सामने उसके नहर की बडाई कर दे और लेखक के सामन उसके ग्र थ की। यह प्रिय बनने का अमोघ मन्त्र है। जिस साल मैंने बी० ए० पास किया था उस साल कुछ दिन लिखने की धुन उठी थी। लॉ कालेज के फस्ट इयर मे सेक्शन और बोर्ड की परवाह न करके एक सुखमय जीवन नामक पोथी लिख चुका था। समालोचकों ने आडे हाथो लिया था और वर्ष-भर म सत्रह प्रतियाँ बिकी थी। आज मेरी कदर हुई कि कोई उसका सराहनेवाला तो मिला।

इतने मे हम लोग बरामदे म पहुँचे, जहाँ पर कनटोप पहने पजाबी ढग की दाढी रखे एक अधेड महाशय कुर्सी पर बठे पुस्तक पढ रहे थे। बालिका बोली—

'चाचाजी, आज आपके बाबू जयदेवशरण वर्मा बी० ए० को साथ लायी हू। इनकी बाइसिकिल बेकाम हो गयी है। अपने प्रिय ग्र थकार से मिलाने के लिए कमला को धन्यवाद मत दीजिए दीजिए उनके पम्प भूल आने का !'

वृद्ध ने जल्दी ही चश्मा उतारा और दोनो हाथ बढाकर मुझसे मिलने के लिए पर बढाये।

कमला जरा अपनी माता को तो बुला ला। आइए बाबू साहब आइए। मुझ आपसे मिलने की बडी उत्कठा थी। मैं गुलाबराय वर्मा हूँ। पहले कमसेरियट म हेड क्लक था। अब पेंशन लेकर इस एकात स्थान म रहता हू। दो गौ रखता हू और कमला तथा उसके भाई प्रबोध को पढाता हूँ। मैं ब्रह्मसमाजी हू, मेरे यहाँ परदा नही ह। कमला ने हिन्दी मिडिल पास कर लिया है। हमारा समय शास्त्रो के पढने म बीतता है। मेरी धमपत्नी

भोजन बनाती और कपड़े सी लेती है, मैं उपनिषद् और योगवासिष्ठ का तर्जुमा पढ़ा करता हूँ। स्कूल में लड़के बिगड़ जाते हैं, प्रबोध को इसी लिए घर पर पढ़ाता हूँ।"

इतना परिचय दे चुकने पर वृद्ध ने श्वास लिया। मुझे भी इतना ज्ञान हुआ कि कमला के पिता मेरी जाति के ही हैं। जो कुछ उन्होंने कहा था, उसकी ओर मेरे कान नहीं थे—मेरे कान उधर थे, जिधर से माता को लेकर कमला आ रही थी।

आपका ग्रन्थ बड़ा ही अपूर्व है। दाम्पत्य सुख चाहने वालों के लिए लाख रुपये में भी अनमोल है। धन्य है आपको! स्त्री को कैसे प्रसन्न रखना, घर में कलह कैसे नहीं होने देना, बाल बच्चों को क्योंकर सच्चरित्र बनाना, इन सब बातों में आपके उपदेश पर चलने वाला पृथ्वी पर ही स्वर्ग सुख भोग सकता है। पहले कमला की माँ और मेरी कभी-कभी खटपट हो जाया करती थी। उनके ख्याल अभी पुराने ढंग के हैं। पर जबसे मैं रोज भोजन के पीछे उस आध घंटे तक आपकी पुस्तक का पाठ सुनाने लगा हूँ, तबसे हमारा जीवन हिण्डोले की तरह झूलते-झूलते बीतता है।'

मुझे कमला की माँ पर दया आयी, जिसको वह कूड़ा-करकट रोज सुनना पड़ता होगा। मैंने सोचा कि हिन्दी के पत्र-सम्पादकों में यह बूढ़ा क्यों न हुआ? यदि होता तो आज मेरी तूती बोलने लगती।

'आपको गृहस्थ-जीवन का कितना अनुभव है! आप सब कुछ जानते हैं! भला इतना ज्ञान कभी पुस्तकों से मिलता है? कमला की माँ कहा करती थी कि आप केवल किताबों के कीड़े हैं सुनी-सुनायी बातें लिख रहे हैं। मैं बार-बार यह कहता था कि इस पुस्तक के लिखने वाले को परिवार का खूब अनुभव है। धन्य है आपकी सहधर्मिणी! आपका और उसका जीवन कितने सुख से बीतता होगा! और जिन बालकों के आप पिता हैं वे कैसे बड़भागी हैं कि सदा आपकी शिक्षा में रहते हैं, आप जैसे पिता का उदाहरण देखते हैं।"

कहावत है कि वेश्या अपनी अवस्था कम दिखाना चाहती है और साधु अपनी अवस्था अधिक दिखाना चाहता है। भला, ग्रन्थकार का पद इन दोनों में किसके समान है? मेरे मन में आयी कि कह दूँ कि अभी मेरा पचीसवाँ वर्ष चल रहा है कहाँ का अनुभव और कहाँ का परिवार। फिर सोचा कि ऐसा कहने से ही मैं वृद्ध महाशय की निगाहों से उतर जाऊँगा और कमला की माँ सच्ची हो जायगी कि बिना अनुभव के छोकरे ने गृहस्थ के कर्त्तव्य धर्मों पर पुस्तक लिख मारी है। यह सोचकर मैं मुसकरा दिया और

ऐसी तरह मुँह बनाने लगा कि वृद्ध समझा कि अवश्य मैं संसार समुद्र में गोते मारकर नहाया हुआ हूँ।

[5]

वृद्ध ने उस दिन मुझे जाने नहीं दिया। कमला की माता ने प्रीति के साथ भोजन कराया और कमला ने पान लाकर दिया। न मुझे अब काता-नगर की मलाई की बरफ याद रही और न सनकी मित्र की। चाचाजी की बातों में की सकड़े सत्तर तो मेरी पुस्तक और उसके रामबाग लाभों की प्रशंसा थी, जिसको सुनते-सुनते मेरे कान दुख गये। की सकड़ा पचीस वह मेरी प्रशंसा और मेरे पति-जीवन और पितृ-जीवन की महिमा गा रहे थे। काम की बात बीसवाँ हिस्सा थी जिससे मालूम पड़ा कि अभी कमला का विवाह नहीं हुआ है, उसे अपनी फूलों की क्यारी के सम्पालन का बड़ा प्रेम है, 'वह सखी' के नाम से 'महिला मनोहर' मासिक पत्र में लेख भी दिया करती है।

सायंकाल को मैं बगीचे में टहलने निकला। देखता क्या हूँ कि एक कोने में केले के झाड़ों के नीचे मालतियों और रजनीगंधा की क्यारियाँ हैं और कमला उनमें पानी दे रही है। मैंने सोचा कि यही समय है। आज मरना है या जीना है। उसको देखते ही मेरे हृदय में प्रेम की अग्नि जल उठी थी और दिन-भर वहाँ रहने से वह धधकने लग गयी थी। दो ही पहर में मैं बालक से युवा हो गया था। अंग्रेजी महाकाव्यों में प्रेममय उपन्यासों में और सोम के संस्कृत नाटकों में जहाँ-जहाँ प्रेमिका प्रेमिक का वार्तालाप पढ़ा था वहाँ-वहाँ का दृश्य स्मरण करके वहाँ-वहाँ के वाक्यों को घोख रहा था पर यह निश्चय नहीं कर सका कि इतने थोड़े परिचय पर भी बात कैसे करनी चाहिए। अंत को अंग्रेजी पढ़ने वाले की धृष्टता ने आर्यकुमार की शालीनता पर विजय पायी और चपलता कहिए, बेसमझी कहिए ढीठपन कहिए, मैंने दौड़ कर कमला का हाथ पकड़ लिया। उसके चेहरे पर सुर्खी दौड़ गयी और डोलची उसके हाथ से गिर पड़ी। मैं उसके कान में कहने लगा—

आपसे एक बात कहनी है।'

क्या ? यहाँ कहने को कौन सी बात है ?'

जबसे आपको देखा है तबसे—'

'बस, चुप करो। ऐसी धृष्टता !'

अब मेरा वचन-प्रवाह उमड़ चुका था। मैं स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या कर रहा हूँ, पर लगा कहने प्यारी कमला तुम मुझे प्राणों से बढ़-कर हो प्यारी कमला मुझे अपना भ्रमर बनने दो। मेरा जीवन तुम्हारे बिना मरुस्थल है उसमें मन्दाकिनी बनकर बहो। मेरे जलते हुए हृदय में

अमृत की पट्टी बन जाओ। जब से तुम्हें देखा है, मेरा मन मेरे अधीन नहीं है। मैं तब तक शान्ति न पाऊँगा जब तक तुम—'

कमला जोर से चमक उठी और बोली—'आपको ऐसी बातें कहते लज्जा नहीं आती? धिक्कार है आपकी शिक्षा को और धिक्कार है आपकी विद्या को। इसी को आपने सभ्यता मान रखा है कि अपरिचित कुमारी से एकान्त में ढूँढ़कर ऐसा घृणित प्रस्ताव करें। तुम्हारा यह साहस कैसे हो गया? तुमने मुझे क्या समझ रखा है? 'सुखमय जीवन' का लेखक और ऐसा घृणित चरित्र! चिल्लू-भर पानी में डूब मरो। अपना काला मुँह मुझे मत दिखाओ। अभी चाचाजी को बुलाती हूँ।

मैं सुनता जा रहा था। क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? यह अग्नि-वर्षा मेरे किस अपराध पर? तो भी मैंने हाथ नहीं छोड़ा। कहने लगा 'सुनो कमला, यदि तुम्हारी कृपा हो जाय तो सुखमय जीवन—'

'देखा तेरा सुखमय जीवन! आस्तीन के साँप! पापात्मा!! मैंने साहित्य-सेवी जानकर और ऐसे उच्च विचारों का लेखक समझ कर तुझे अपने घर में घुसने दिया और तेरा विश्वास और सत्कार किया था। प्रच्छन्न-पापिन्[1]! बकदाम्भिक[2]! बिडालव्रतिक[3]! मैंने तेरी सारी बातें सुन ली हैं।' चाचाजी आकर लाल-लाल आँखें दिखाते हुए क्रोध से काँपते हुए कहने लगे, 'शैतान, तुझे यही आकर माया-जाल फैलाने का स्थान मिला। ओफ! मैं तेरी पुस्तक से छला गया। पवित्र जीवन की प्रशंसा में फार्मों-के-फार्म काले करने वाले तेरा ऐसा हृदय! कपटी! विष के घड़े—'

उनका धाराप्रवाह बन्द ही नहीं होता था पर कमला की गालियाँ और थीं और चाचाजी की और। मैंने भी गुस्से में आकर कहा, 'बाबू साहब जबान सम्हालकर बोलिए। आपने अपनी कन्या को शिक्षा दी है और सभ्यता सिखायी है, मैंने भी शिक्षा पायी है और कुछ सभ्यता सीखी है। आप धर्म-सुधारक हैं। यदि मैं उसके गुणों और रूप पर आसक्त हो गया, तो अपना पवित्र प्रणय उससे क्यों न बताऊँ? पुराने ढर्रे के पिता दुराग्रही होते सुने गये हैं। आपने क्यों सुधार का नाम लजाया है?'

'तुम सुधार का नाम मत लो। तुम तो पापी हो। सुखमय जीवन के कर्ता होकर—'

'भाड़ में जाय सुखमय जीवन'! उसी के मारे नाकों दम है!! 'सुखमय जीवन' के कर्त्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जनम भर क्वाँरा ही रहे? क्या उसके प्रेमभाव नहीं हो सकता? क्या उसके हृदय नहीं होता?'

1जिससे पाप ढके हुए हों। 2बगुले की तरह छल करने वाला।
3बिल्ली की तरह व्रत रखने वाला।

'हैं जनम-भर क्वाँरा ?'

'हैं काहे को ? मैं तो आपकी पुत्री से निवेदन कर रहा था कि जिसने उसने मेरा हृदय हर लिया है बस यदि अपना हाथ मुझे दे तो उसके साथ 'सुखमय जीवन' के उन आदर्शों को प्रत्यक्ष अनुभव करूँ जो अभी तक मेरी कल्पना में हैं। पीछे हम दोनों आपकी आज्ञा माँगने आते। आप तो पहले ही दुर्वासा बन गये।'

'तो आपका विवाह नहीं हुआ ? आपकी पुस्तक से तो ज्ञान पड़ता है कि आप कई वर्षों के गृहस्थ जीवन का अनुभव रखते हैं। तो कमला की माता ही सच्ची थी।''

इतनी बातें हुई थीं पर न मालूम क्यों मैंने कमला का हाथ नहीं छोड़ा था। इतनी गर्मी के साथ शास्त्रार्थ हो चुका था परन्तु वह हाथ जो क्रोध के कारण लाल हो गया था, मेरे हाथ में ही पकड़ा हुआ था। अब उसमें सात्त्विकभाव का पसीना आ गया था और कमला ने लज्जा से आँखें नीची कर ली थीं। विवाह के पीछे कमला कहा करती है कि न मालूम विधाता की किस कला से उस समय मैंने तुम्हें झटककर अपना हाथ नहीं खींच लिया। मैंने कमला के दोनों हाथ खींचकर अपने हाथों के सम्पुट में ले लिये (और उसने उन्हें हटाया नहीं!) और इस तरह चारों हाथ जोड़कर वृद्ध से कहा—

'चाचाजी, उस निकम्मी पोथी का नाम मत लीजिए। बेशक कमला की माँ सच्ची है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक पहचान सकती हैं कि कौन अनुभव की बातें कह रहा है और कौन गप्पें हाँक रहा है। आपकी आज्ञा हो तो कमला और मैं दोनों सच्चे सुखमय जीवन का आरम्भ करें। दस वर्ष पीछे मैं जो पोथी लिखूँगा, उसमें किताबी बातें न होंगी केवल अनुभव की बातें होंगी।''

वृद्ध ने जेब से रुमाल निकालकर चश्मा पोंछा और अपनी आँखें पोंछीं। आँखों में कमला की माता की विजय होने के क्षोभ के आँसू थे, या घर बैठे पुत्री को योग्य पात्र मिलने के हर्ष के आँसू राम जाने।

उन्होंने मुसकराकर कमला से कहा, 'दोनों मेरे पीछे पीछे चले आओ। कमला! तेरी माँ ही सच कहती थी।'' वृद्ध बँगले की ओर चलने लगे। उनकी पीठ फिरते ही कमला ने आँखें मूँदकर मेरे कन्धे पर सिर रख दिया।

प्रथम प्रकाशन भारतमित्र, 1911

बुद्धू का काँटा

[१]

रघुनाथ पप्रसाद त्रुत् त्रिवदी—या रग्नास् पर्शाद तिर्वेदी—यह क्या?

क्या करें, दुविधा म जान है। एक ओर तो हिन्दी का यह गौरव-पूर्ण दावा है कि इसमे जसा बोला जाता है वैसा लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला जाता है। दूसरी ओर हिन्दी के कर्णधारों का अविगत शिष्टाचार है कि जैसे धर्मोपदेशक कहते है कि हमारे कहने पर चलो, हमारी करनी पर मत चलो वैसे ही जैसे हिन्दी के आचार्य लिखें वैसे लिखो, जसे वे बोलें वैसे मत लिखो शिष्टाचार भी कैसा? हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरणकषायित कण्ठ से कहे 'पर्सोत्तमदास और 'हर्किसनलाल' और उनके पिट्ठू छापें ऐसी तरह कि पढा जाय—'पुरुषोत्तम अ दास अ' और 'हरि कृष्णलाल अ'।

अजी जाने भी दो, बडे-बडे बह गये और गधा कहे कितना पानी! कहानी कहने चले हो, या दिल के फफोले फोडन?

अच्छा, जो हुकुम। हम लालाजी के नौकर है, बैगनों के थोडे ही हैं। *रघुनाथप्रसाद त्रिवदी अब के इण्टरमीजिएट परीक्षा मे बैठा है।* उसके पिता दारसूरी के पहाड के रहने वाले और आगरे के बुभातिया बैंक के मैनेजर हैं। बैंक के दफ्तर के पीछे चौक मे उनका तथा उनकी स्त्री का बारहमासिया मकान है। बाबू बडे सीधे, अपने सिद्धान्तों के पक्के और खरे आदमी हैं जैसे पुराने ढग के होते हैं। बैंक के स्वामी इन पर इतना भरोसा करते हैं कि कभी छुट्टी नही देते और बाबू काम के इतने पक्के हैं कि छुट्टी माँगते नही। न बाबू वैसे कट्टर सनातनी हैं कि बिना मुँह धोये ही तिलक लगाकर स्टेशन पर

दरभङ्गा महाराज के स्वागत को जाय, और न ऐसे समाजी ही हैं कि सजदी लेकर 'तार पापगढ लड्ढा का" करने दौड़ें। उसूलों के पक्के हैं।

हाँ उसूलों के पक्के हैं। सुबह एक प्याला चाय पीते हैं तो ऐसा कि जेठ में भी नहीं छोड़ते और माघ में भी एक के दो नहीं करते। उड़द की दाल खाते हैं क्या मजाल है कि बुखार में भी मूँग की दाल का एक दाना खा जायें। आजकल के एम० ए० बी० ए० पासवालों को हँसते हैं कि शेक्सपीयर और बेकन चाट जाने पर भी वे दफ्तर के काम की अङ्गरेजी चिट्ठी नहीं लिख सकते। अपने जमाने के साथियों को सराहते हैं जो शेक्सपीयर के दो-तीन नाटक न पढ़कर सारे नाटक पढ़ते थे डिक्शनरी से अङ्गरेजी शब्दों के लटिन धातु याद करते थे। अपने गुरु बाबू प्रकाशबिहारी मुकर्जी की प्रशंसा रोज करते थे कि उन्होंने लाइब्रेरी इम्तहान पास किया था। ऐसा कोई दिन ही बीतता होगा (निगोशिएबल इन्स्ट्रूमेण्ट एक्ट के अनुसार होने वाली तातीलों को मत गिनिए) कि जब उनके 'लाइब्रेरी इम्तहान' का उपाख्यान नये बी० ए० हेडक्लर्क को उसके मन और बुद्धि की उन्नति के लिए उपदेश की तरह नहीं सुनाया जाता हो। लाट साहब ने मुकर्जी बाबू को बंगाल-लायब्रेरी में जाकर खड़ा कर दिया। राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में बलि के खूँटे में बंधे हुए शुनःशेप की तरह बाबू आलमारियों की ओर देखने लगे। लाट साहब मनचाही जैसी आलमारियों से मन चाहे जैसी किताब निकालकर मन चाहे जहाँ से पूछने लगे। सब आलमारियाँ खुल गयीं सब किताबें चुन गयीं लाट साहब की बाँह दुख गयी, पर बाबू कहते-कहते नहीं थके, लाट साहब ने अपने हाथ से बाबू को एक घड़ी दी और कहा कि मैं अंगरेजी-विद्या का छिलका ही भर जानता हूँ, तुम उसकी गिरी खा चुके हो। यह कथा पुराण की तरह रोज कही जाती थी।

इन उसूल-पन बाबूजी का एक उसूल यह भी था कि लड़के का विवाह छोटी उमर में नहीं करेंगे। इनकी जाति में पाँच-पाँच वर्ष की कन्याओं के पिता लड़के वालों के लिए वैसे मुँह बाये रहते हैं जैसे पुष्कर की झील में मगरमच्छ नहाने वालों के लिए, और वे कभी कभी दरवाजे पर धरना देकर आ बैठते थे कि हमारी लड़की लीजिए नहीं तो हम आपके द्वार पर प्राण दे देंगे। उसूलों के पक्के बाबूजी इनके भय से देश ही नहीं जाते थे और वे कन्या पिता-रूपी मगरमच्छ अपनी पहाड़ी गोह को छोड़कर आगरे आकर बाबूजी की निद्रा का भंग करते थे। रघुनाथ की माता को सास बनने का बड़ा चाव था। जहाँ वह कुछ कहना आरंभ करतीं कि बाबूजी बैंक की लेजर-बुक खोलकर बैठ जाते या लकड़ी उठाकर घूमने चल देते। बहस करके स्त्रियों से

आज तक कोई नहीं जीता, पर पुष्ट मारकर जीत सकता है।

बाबू के पड़ोस में एक विवाह हुआ था। उस घर की मालकिन लाहना बांटती हुई रघुनाथ की मां के पास आयी। रघुनाथ की मां ने नयी बहू को आसीस दी और स्वयं मिठाई रखने तथा बहू की गोद में भरने के लिए कुछ मेवा लाने भीतर गयी। इधर मुहल्ले की वृद्धा ने कहा — "पन्द्रह बरस हो गये लाहना लेते लेते। आज तक एक बताशा भी इनके यहां से नहीं मिला।" दूसरी बुढ़िया, जो तीन बड़ी और दो छोटी पतोहू की सेवा से इतनी सुखी थी कि रोज मृत्यु को बुलाया करती थी, बोली, "बड़े भागों से बेटों का ब्याह होता है।"

तीसरी ने नाक की झुलनी हिलाकर कहा—"अपना खाने-पहरने का लोभ कोई छोड़े तब तो बेटे की बहू लावे। बहू के आते ही खाने-पहनने में कमी जो हो जाती है।" चौथी ने कहा—"ऐसे कमाने-खाने को आग लगे। यों तो कुत्ते भी अपना पेट भर लेते हैं। कमाई सफल करने का यही तो मौका होता है।" इसके पति ने चारों बेटों के विवाह में मकान और जमीन गिरवी रख दिये थे और कम-से-कम अपने जीवन-भर के लिए कंगाली कम्बल ओढ़ लिया था।

अवश्य ही ये सब बातें रघुनाथ की मां को सुनाने के लिए कही गयी थीं। रघुनाथ की मां भी जानती थी कि ये मुझे सुनाने को कही जा रही हैं। परन्तु उसके आते ही मुहल्ले की एक और ही स्त्री की निन्दा चल पड़ी और रघुनाथ की मां यह जानकर भी कि उस स्त्री के पास जाते ही मेरी भी ऐसी निन्दा की जायगी, हँसते-हँसते उनकी बातों में सम्मति देने लग गयी। पतोहुओं से सुखिनी बुढ़िया ने एक हलके से अनुदात्त से कहा—"अब तुम रघुनाथ का ब्याह इस साल तो करोगी?" "उसके चाचा जानें, गहने तो बनवा रहे हैं" — रघुनाथ की मां ने भी वैसे ही हलके उदात्त से उत्तर दिया। उसके अनुदात्त को यह समझ गयी और इसके उदात्त को वे सब। स्वर का विचार हिन्दुस्तान के मर्दों की भाषा में भले ही न रहा हो, स्त्रियों की भाषा में उससे अब भी कई अर्थ प्रकाश किये जाते हैं।

"मैं तुम्हें सलाह देती हूँ कि जल्दी रघुनाथ का ब्याह कर लो। कलयुग के दिन हैं, लड़का बोर्डिङ्ग में रहता है, बिगड़ जायगा। आगे तुम्हारी मर्जी क्या बहन सच है न? तू क्यों नहीं बोलती?"

"मैं क्या कहूँ, मेरे रघुनाथ का-सा बेटा होता तो अब तक पोता

खिलाती।'' यों और दो-चार बातें करके यह स्त्री दल चला गया और गृहिणी के हृदय-समुद्र को कई विचारों की लहरों से छलकता हुआ छोड़ गया।

सायंकाल भोजन करते समय बाबू बोले, "इन गर्मियों में रघुनाथ का ब्याह कर देंगे।"

स्त्री ने पहले ही लेजर और छड़ी छिपाकर ठान ली थी कि आज बाबूजी को दबाऊँगी कि पड़ोसियों की बोलियाँ नहीं सही जातीं। अचानक रङ्ग पहले चढ़ गया। पूछने लगी—'हैं, आज यह कैसे सूझी?'

दारसूरी से भैया की चिट्ठी आयी है। बहुत कुछ बातें लिखी हैं। कहा है कि तुम तो परदेशी हो गये। यहाँ चार महीने बाद बृहस्पति सिंहस्थ हो जायगा फिर एक-दो वर्ष तक ब्याह नहीं होंगे। इसलिए छोटी-छोटी बच्चियों के ब्याह हो रहे हैं, बृहस्पति के सिंह के पेट में पहुँचने के पहले कोई चार-पाँच वर्ष की लड़की कुँवारी बचेगी। फिर जब बृहस्पति कहीं शेर की दाढ़ में से जीता-जागता निकल आया तो न बराबर का घर मिलेगा, न जोड़ की लड़की। तुम्हें क्या है, गाँव में बदनाम तो हम हो रहे हैं। मैंने अभी दो-तीन घर रोक रखे हैं। तुम जानो, अब के मेरा कहना न मानोगे तो मैं तुमसे जन्म-भर बोलने का नहीं।"

'भैया ठीक तो कहते हैं।'

'मैं भी मानता हूँ कि अब लड़के को उन्नीसवाँ वर्ष है। अब के इण्टरमीजिएट पास हो ही जायगा। अब हमारी नहीं चलेगी, देवर भौजाई जैसा नचायेंगे वैसा ही नाचना पड़ेगा। अब तक मेरी चली यही बहुत हुआ।"

"भैया की कहो, मेरा कहना तो पाँच वर्ष से जो मान रहे हो।"

'अच्छा अब जिदो मत। मैंने दो महीने की छुट्टी ली है। छुट्टी मिलते ही देश चलते हैं। बच्चा को लिख दिया है कि इम्तहान देकर सीधा घर चला आ। दस-पन्द्रह दिन में आ जाएगा। तब तक हम घर भी ठीक कर लें और न्नि भी। अब तुम आगर बहू को लेकर आओगी।'

स्त्री ने सोचा, बनारसवाली बुढ़िया का उलाहना तो मिटेगा।

[२]

"बा' छा[1] मेरे हाल मे आपका क्या जी लगेगा ? गरीबो का क्या हाल ? रब[2] रोटी देता है दिन-भर मेहनत करता हू, रात पड रहता हू। बा' छा, तुम जैसे साईं[3] लोगो की बरकत से मैं हज कर आया, ख्वाजा को उस देख आया, तीन वेले[4] नमाज पढ लेता हू, और मुझे क्या चाहिए ? बा' छा मेरा काम टट्टू चलाना नहीं है। अब तो इस मोती की कमाई खाता हू, कभी सवार ले जाता हू, कभी लाता[5], ढाई मण कणक[6] पा[7] लेता हू तो दो पौली[8] बच जाती है। रब की मरजी, मेरा अपना घर था, सिंहा[9] के वक्त की काफी जमीन थी, नाते[10]पडोसियो म मेरा नाम था। मैं धामपुर के नवाब का बनाता था और मेरे घर मे से उसके जनाने मे पकाती थी। एक रात को मैं खाना बना खिला के अपनी मजडी[11] पर सोया था कि मेरे मौला[12] न मुझे आवाज दी— 'लाही, लाही, हज कर आ।" मैं आखें मल के खडा हो गया, पर कुछ दिखा नही। फिर सोने लगा कि फिर वही आवाज आयी कि "लाही, तू मेरी पुकार नही सुनता ? जा हज कर आ।" मैं समझा, मेरा मौला मुझे बुलाता है। फिर आवाज आई— 'लाही, चल पड, मैं तेरे नाल[13] हू, मैं तेरा बेडा पार करूँगा।" मुझसे रहा नही गया। मैंने अपना कम्बल उठाया और आधी रात को चल पडा। बा छा मैं रातो चला दिना चला भीख मागकर चलते-चलते बम्बई पहुँचा। वहाँ मेरे पल्ले टका नही था, पर एक हिन्दू भाई ने मुझे टिकट ले दिया। काफ्ले के साथ मैं जहाज पर चढ गया। वही मुझे छ महीने लगे। पूरी हज की। जब लौटे तो रास्ते मे जहाज भटक गया। एक चट्टान पानी के नीचे थी, उससे टकरा गया। उसके पीछे की दोनो लालटनें ऊपर आ गयी और वे हमे शतान की-सी आखें दिखायी देने लगी। सब न समझा मर जायेंगे, पानी मे गोर[14] बनेगी। कप्तान न छोटी किश्तिया खोली और उनमे हाजिया को बिठाकर छोड दिया। मद का बच्चा आप अपनी जगह से नही टला, जहाज के नाल डूब गया। अन्धेरे मे कुछ सूझता नही था। सवेरा होते ही हमने देखा कि दो किश्तिया बह रही हैं और न जहाज है, न दूसरी किश्तिया। पता ही नही हम कहा से किधर जा रहे थे। लहरें हमारी किश्तियो को उछालती, नचाती डुबोती झकोडती थी। जो लहमा बीतता था हम खर मनाते थे। पर मेरे मालिक ने करम[15] किया, मेरे अल्लाह ने, मेरे मौला ने जैसे उस रात को

---

[1]बादशाह [2]ईश्वर [3]स्वामी (यहाँ भक्त) [4]वक्त [5]बोझा [6]गहू [7]लाद लेता हू [8]चवन्नी [9]सिक्खो [10]रिश्तेदार [11]खटिया [12]ईश्वर [13]साथ [14]कब्र [15]कृपा।

कहा था मेरा बेड़ा पार किया। तीन दिन तीन रात हम बहते बहते रहे—चौथे दिन माल के जहाज ने हमको उठा लिया और छठे दिन कराची में हमने दुआ की नमाज पढ़ी। पीछे सुना कि तीन सौ हाजी मर गये।

"वहां से मैं ख्वाजा की जियारत को चला, अजमेर शरीफ में दरगाह का दीदार पाया। इस तरह, बाबा साढ़े सात महीने पीछे मैं घर आया। आकर घर देखता क्या हूं कि सब चटरा हो गया है। नवाब जब सबेरे उठा तो उसने नाश्ता मांगा। नौकरों ने कहा कि इलाही का पता नहीं। बस वह जल गया। उसने मेरा घर फुंकवा दिया, मेरी जमीन अपनी रखवाल[10] के भाई को दे दी और मेरी बीवी को लौंडी बनाकर कैद कर लिया। मैं उसका क्या ले गया था अपना कम्बल ले गया था। और पिछले तीन महीने की तलब अपनी पेटी में उसके बावर्चीखाने में रख गया था। भला, मेरा मौला बुलावे और मैं न जाऊं? पर उसको जो एक घण्टा देर से खाना मिला इससे बढ़कर और गुनाह क्या होता?

"इसके पन्द्रहवें दिन जनाने में एक सोने की अंगूठी खो गयी। नवाब ने मेरी घरवाली पर शक किया। उससे पूछा तो वह बोली कि मेरा कौन सा घर और घरवाला बैठा है कि उसके पास अंगूठी ले जाऊंगी। मैं तो यहीं रहती हूं। सीधी बात थी, पर उससे सुनी नहीं गयी। जला-भुना तो था ही, बेंत लेकर लगा मारने। बाबा मैं क्या कहूं मौला मेरा गुनाह बख्शे आज पांच बरस हो गये हैं पर जब मैं घरवाली की पीठ पर पचासों दागों की गुच्छियां देखता हूं तो यही पछतावा रहता है कि रब ने उस सूर का (तोबा! तोबा!) गला घोटने को यहां क्यों न रखा। मारते-मारते जब मेरी घरवाली बेहोश हो गयी तब डरकर उसे गांव के बाहर फिकवा दिया। तीसरे दिन वह वहां से घिसटती-घिसटती चलकर अपने भाई के यहां पहुंची।"

रघुनाथ ने रुंधे गले से कहा, "तुमने फरयाद नहीं की?"

"कचहरियां गरीबों के लिए नहीं हैं बाबा वे तो सेठों के लिए हैं। गरीबों की फरयाद सुननेवाला सुनता है। उसने पन्द्रह दिन में सुनकर हुकुम भी दे दिया। मेरी औरत को मारते-मारते उस पाजी के हाथ की अंगुली में एक बेंत की सली चुभ गयी थी। वही पक गयी। लहू में जहर हो गया। पन्द्रहवें दिन मर गया। हज से आकर मैंने सारा हाल सुना। अपने जले हुए

---

[10] रखैली।

[illegible] को देख कर [illegible] को [illegible] को भी देखा। [illegible]। [illegible] में [illegible]। [illegible] [illegible] में [illegible] को [illegible] है।' मैं [illegible]। [illegible] और [illegible] का [illegible] हूँ और [illegible] की [illegible] करता हूँ। [illegible] का [illegible] हूँ।

रघुनाथ इलाहाबाद देख [illegible] के [illegible] तक आया। वहाँ [illegible] पहाड़ी रास्ता था। [illegible] पर [illegible] जिनके [illegible] पहाड़ थे। रास्ता साँप की तरह बलखा कर चलता था। मालूम होता कि एक घाटी पूरी हो गयी है पर ज्योंही मोड़ पर आये, त्योंही उसकी जड़ में एक और घाटी मील का चक्कर निकल पड़ता। एक ओर ऊँचा पहाड़ दूसरी ओर खाई जो कुछ गहरी थी। और किनारे के टट्टुओं [illegible] कि सड़क के छोर पर [illegible] जिससे सवार की एक टाँग तो खड्ड पर ही लटकती रहे। [illegible] वैसा ही रास्ता वैसी ही खड्ड सामने वैसे ही कोने पर चलने वाले टट्टू। जब कुछ बातें और जी न लगा तो घोड़ी के स्वामी इलाही से रघुनाथ ने उसका इतिहास पूछा। उसने जो सीधी और विश्वास से भरी दुख की धाराओं से भीगी हुई कथा कही उससे कुछ मार्ग कट गया। कितने मजदूरों का इतिहास ऐसी विप-घटनाओं की धूप-छाया से भरा हुआ है। पर हम लोग प्रकृति के इन सच्चे चित्रों को न देखकर उपन्यासों की मृगतृष्णा में चमत्कार ढूँढते हैं।

धूप चढ़ गयी थी कि वे एक ग्राम में पहुँचे। गाँव के बाहर सड़क के सहारे एक कुआँ था और उसी के पास एक पेड़ के नीचे इलाही ने स्वयं और अपने घोड़ी के लिए विश्राम करने का प्रस्ताव किया। "घोड़े को न्हारी देकर और पानी वानी पीकर धूप ढलते ही चल देंगे और बात-की-बात में आपको घर पहुँचा देंगे।' रघुनाथ को भी टाँगें सीधी करने में कोई उज्र न था। खाने की इच्छा बिल्कुल न थी। हाँ पानी की प्यास लग रही थी। रघुनाथ अपने बक्स में से लोटा डोर निकालकर कुएँ की तरफ चला।

(3)

कुएँ पर देखा कि छह-सात स्त्रियाँ पानी भरने और भरकर ले जाने की कई दशाओं में हैं। गाँवों में परदा नहीं होता। वहाँ सब पुरुष सब स्त्रियों से और सब स्त्रियाँ सब पुरुषों से निडर होकर बातें कर लेती हैं। और शहरों के लम्बे घूँघटों के नीचे जितना पाप होता है, उसका दसवाँ हिस्सा भी गाँवों

में नहीं होता। इसी से तो कहावत में बाप ने बेटे को उपदेश दिया है कि लम्बे घूँघट-वाली से बचना। अनजान पुरुष किसी भी स्त्री से 'बहन' कहकर बात कर लेता है और स्त्री बाजार में जाकर किसी भी पुरुष से 'भाई' कहकर बोल लेती है। यहाँ नागरिक सभ्यता दिन-भर के व्यवहारों में 'पर्दापाट' का काम दे देती है। हँसी-ठट्ठा भी होता है पर कोई दुर्भाव नहीं खड़ा होता। राजपूताने के गाँवों में स्त्री ऊँट पर बैठी निकल जाती है और छैला के लोग 'मामीजी, मामीजी' चिल्लाया करते हैं न उनका भय इस शब्द से बढ़कर कुछ होता है और न वह चिढ़ती है। एक गाँव में बारात जीमने बैठी। उस समय स्त्रियाँ समधियों को गाली गाती हैं। पर गालियाँ न गायी जाती देख नागरिक-सुधारक बरातों को बड़ा हर्ष हुआ। वह ग्राम के एक बुड्ढे से कह बैठा, 'बड़ी खुशी की बात है कि आपके यहाँ इतनी तरक्की हो गयी है।' बुड्ढा बोला 'हाँ साहब तरक्की हो रही है। पहले गालियों में कहा जाता था फलाने की फलानी के साथ और अमुक की अमुक के साथ। लोग-लुगाई सुनते थे हँस देते थे। अब घर-घर में वे ही बातें सच्ची हो रही हैं। अब गालियाँ गायी जाती हैं तो चोरों की दाढ़ी में तिनके निकलते हैं। तभी तो आंदोलन होते हैं कि गालियाँ बन्द करो, क्योंकि वे चुभती हैं।''

रघुनाथ यदि चाहता तो किसी भी पानी भरने वाली से पीने को पानी माँग लेता। परन्तु उसने अब तक अपनी माता को छोड़कर किसी स्त्री से कभी बात नहीं की थी। स्त्रियों के सामने बात करने को उसका मुँह खुल न सका। पिता की कठोर शिक्षा से बालकपन से ही उसे वह स्वभाव पड़ गया था कि दो वर्ष प्रयाग में स्वतन्त्र रहकर भी वह अपने चरित्र को, केवल पुरुषों के समाज में बैठकर पवित्र रख सका था। जो कोने में बैठकर उपन्यास पढ़ा करते हैं उनकी अपेक्षा खुले मैदान में खेलने वालों के विचार अधिक पवित्र रहते हैं—इसी लिए फुटबाल और हॉकी के खिलाड़ी रघुनाथ को कभी स्त्री विषयक कल्पना ही नहीं होती थी। वह मानवी सृष्टि में अपनी माता को छोड़कर और स्त्रियों के होने या न होने से अनभिज्ञ था। विवाह उसकी दृष्टि में एक आवश्यक किन्तु दुर्ज्ञेय बंधन था जिसमें सब मनुष्य फँसते हैं और पिता की आज्ञानुसार वह विवाह के लिए घर उसी रुचि से जा रहा था जिससे कि कोई पहले-पहल थियेटर देखने जाता है। कुएँ पर इतनी स्त्रियों को इकट्ठा देखकर वह सहम गया, उसके ललाट पर पसीना आ गया और उसका वश चलता तो वह बिना पानी पिये ही लौट आता। अस्तु चुपचाप डोर-लोटा लेकर एक कोने पर जा खड़ा हुआ और डोर खोलकर फाँसा देने लगा।

प्रयाग के बाटिङ्ग की टाटियो की कृपा से, ज म-भर कभी कुएँ से पानी नही खीचा था, न लोट म फासा लगाया था। एसी अवस्था मे उसने सारी डोर कुएँ पर बखेर दी और उसकी जो छोर लोट से बाधी वह कभी तो लोटे को एक सौ बीस अश के कोण पर लटकाती और कभी सत्तर पर। डोर के जब बट खुलते है तब वह बहुत पेंच खाती है। इन पेंचो मे रघुनाथ की बाह भी उलझ गयी। सिर नीचा किये ज्योही वह डोर को सुलझाता था, त्योही वह उलझती जाती थी। उसे पता नही था कि गाव की स्त्रियो के लिए वह अद्भुत कौतुक नयनोत्सव हो रहा था।

धीरे-धीरे टीका-टिप्पणी आरम्भ हो गयी। एक ने हँसकर कहा, 'पटवारी है, पमाइश की जरीब फँसाता है।'

दूसरी बोली, 'ना, बाजीगर है, हाथ-पाँव बाधकर पानी म कूद पडेगा और फिर सूखा निकल आयेगा।'

तीसरी बोली, 'क्यो लल्ला घरवालो से लडकर आये हो ?''

चौथी ने कहा, 'क्या कुएँ म दवाई डालोगे ? इस गाव म तो बीमारी नही है।''

इतने म एक लडकी बोली, कहे की दवाई और कहा का पटवारी ? अनाडी है, लोटे म फासा देना नही आता। भाई मेरे घडे का मत कुए मे डाल देना तुमने तो सारी मेड ही रोक ली!' यो कहकर वह सामने आकर अपना घडा उठाकर ले गयी।

पहली ने पूछा, 'भाइ तुम क्या करोगे ?'

लडकी बात काटकर बोल उठी, "कुए को बाँधेंगे।

पहली— अरे! बोल तो।

लडकी— 'मा ने सिखाया नही।

सङ्कोच प्यास, लज्जा और घबराहट से रघुनाथ का गला रुक रहा था, उसने खासकर कण्ठ साफ करना चाहा। लडकी ने भी वसी ही आवाज की। इस पर पहली स्त्री बढकर आगे आयी और डोर उठाकर कहने लगी 'क्या चाहते हो ? बोलते क्यो नही ?''

लडकी— फारसी बोलेंगे।''

रघुनाथ ने शम से कुछ आखे ऊँची की कुछ मुँह फेरकर कुएँ म कहा 'मुझे पानी पीना है—लोट से निकाल रहा—निकाल लूँगा।

लडकी—' परसो तक।'

स्त्री बोली तो हम पानी पिला दें। लो भाग्यवन्ती गगरी उठा लो। इनको पानी पिला दें।'

लड़की गगरी उठा लायी और बोली, "ले मामी के पालतू, पानी पी ले शरमा मत तेरी बहू म नही कहूँगी।"

इस पर सब स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ी। रघुनाथ के चेहरे पर लाली दौड गयी। उसने यह दिखाना चाहा कि मुझे कोई देख नही रहा है, यद्यपि दस-बारह स्त्रियाँ उसके भौचक्केपन को देख रही थी। सृष्टि के आदि से कोई अपनी झप छिपाने को समर्थ न हुआ, न होगा। रघुनाथ उलटा झेंप गया।

'नही नही, मैं आप ही—'

लड़की—'कुए म कूद क।'

इस पर एक और हसी का फौवारा फूट पडा।

*रघुनाथ ने कुछ आँखें उठाकर लडकी की ओर देखा। कोई चौदह-*पन्द्रह बरस की लड़की, शहर की छोकरियो की तरह पीली और दुबली नही, हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्नमुख। आखो के ढेले, काले सफेद, नही कुछ मटिया नीले और पिघलते हुए। यह जान पडता था कि ढेले अभी पिघलकर बह जायेंगे। आँखो के चौतरग हँसी ओठो पर हँसी और सारे शरीर पर निरोग स्वास्थ्य की हँसी। रघुनाथ की आँख और नीची हो गयी।

स्त्री न फिर कहा "पानी पी लो जी लड़की खडी है।"

रघुनाथ न हाथ धोये। एक हाथ मुँह के आगे लगाया, लड़की गगरी स पानी पिलाने लगी। जब रघुनाथ आधा पी चुका था तब उसने श्वास लेते लेते आँख ऊँची की। उस समय लड़की ने ऐसा मुह बनाया कि ठि-ठि करके रघुनाथ हस पडा, उसकी नाक म पानी चढ गया और सारी आस्तीन भीग गयी। लड़की चुप।

रघुनाथ को खाँसते डगमगाते देखकर वह स्त्री आगे चली आयी और गगरी छीनती हुई लड़की को झिड़ककर बोली "तुझे रात-दिन ऊतपन ही सूझता है। इन्हे गलसुड चला गया। ऐसी हँसी भी किस काम की। लो मैं पानी पिलाती हूँ।"

लड़की— दूध पिला दो, बहुत देर हुई, आँसू भी पोंछ दो।"

सच्चे ही रघुनाथ के आँसू आ गये थे। उसने स्त्री से जल लेकर मुह धोया और पानी पिया। धीरे से कहा, 'बस जी, बस।"

लड़की—'अब के आप निकाल लेंगे।"

रघुनाथ को मुँह पोंछते देखकर स्त्री ने पूछा, 'कहाँ रहते हो?'

आगरे।"

इधर कहाँ जाओगे?"

लडकी—(बीच ही म)— शिकारपुर ! वहाँ एमो का गुरद्वारा है।"
स्त्रियाँ खिलखिला उठी।

रघुनाथ न अपन गाँव का नाम बताया। मैं पहल कभी इधर आया नहीं, कितनी दूर ह कब तक पहुँच जाऊँगा ?" अब भी वह सिर उठाकर बात नही कर रहा था।

लडकी— यही प द्रह-बीस दिन मे । तीन-चार सौ कोस तो होगा।'

स्त्री— छि, दो ढाई मर है अभी घण्टे भर म पहुँच जाते हो।"

"रास्ता सीधा ही है न ?'

लडकी – "नही तो बायें हाथ को मुडकर चीड के पेड के नीचे दाहिने हाथ को मुडने के पीछे सातवें पत्थर पर फिर बायें मुड जाना, आग सीधे जाकर कही न मुडना, सबसे आगे एक गीदड की गुफा है उससे उत्तर को वाड उलाँघकर चल जाना।"

स्त्री— छोकरी तू बहुत सिर चढ गयी है चिकर-चिकर करता ही जाती है ! नही जी एक ही रास्ता है सामने नदी आवेगी परले पार बायें हाथ को गाँव है।"

लडकी— 'नदी म भी यो ही फाँसा लगाकर पानी निकालना।

स्त्री उसकी बात अनसुनी करके बोली क्या उस गाँव म डाक-बाबू होकर आय हो ?"

रघुनाथ—' नही मैं तो प्रयाग म पढता ह।"

लडकी— आ हो, पिरागजी म पढत है ! कुएँ स पानी निकालना पढत होगे ?'

स्त्री— चुप कर, ज्यादा बक-बक काम की नही, क्या इसीलिए तू मेरे यहा आयी ह ?

इस पर महिला-मण्डल फिर हँस पडा। रघुनाथ ने घबराकर इलाही की ओर देखा तो वह मजे मे पेड के नीचे चिलम पी रहा था। इस समय रघुनाथ को हाजी इलाही की ईर्ष्या होन लगी। उसने सोचा कि हज से लौटते समय समुद्र मे खतर कम हैं, और कुएँ पर अधिक।

लडकी— 'क्या जी, परागजी म अक्कल भी बिकती है ?"

रघुनाथ ने मुह फेर लिया।

स्त्री—"तो गाँव मे क्या करने जाते हो ?'

लडकी—"कमाने-खाने।'

स्त्री—' तेरी कैंची नही बन्द होती ! यह लडकी तो पागल हो जायगी।"

रघुनाथ—"मैं वहाँ के बाबू शोभारामजी का लड़का हूँ।"

स्त्री— अच्छा अच्छा तो क्या तुम्हारा ही ब्याह है ?"

रघुनाथ ने सिर नीचा कर लिया।

लड़की— मामी, मामी मुझे भी अपने नये पालतू के ब्याह में ले चलना। बड़ा ब्याहने चला है। यह घोड़ी है और वह जो चिलम पी रहा है नाना बनेगा। वाह जी वाह एस बुड्ढे के आगे भी कोई नहँगा पसारेगी।"

स्त्री लड़की की ओर झपटी। लड़की गगरी उठाकर चलती बनी। स्त्री उसके पीछे कम ही कदम गयी थी कि स्त्री-महामण्डल एक अट्टहास से गूँज उठा।

रघुनाथ इलाही के पास लौट आया। पीछे मुड़कर देखने की उसकी हिम्मत न हुई। उसके गले में भस्म का-सा स्वाद आ रहा था। जीवन-भर में यही उसका स्त्रियों से पहला परिचय हुआ। उसकी आत्म लज्जा इतनी तेज थी कि वह समझ गया कि मैं इनके सामने बन गया हूँ। जीवन में ऐसी स्त्रियों से आधा संसार भरा रहेगा और ऐसी ही किसी से विवाह होगा। तुलसीदास ने ठीक कहा है कि 'तुलसी गाय बजाय के दियो काठ में पाँव।" स्त्रियों की टोली के वाक्य उसे गड रहे थे और वाक्य के दुःस्वप्नों के ऊपर उस पिघलती हुई आँखों वाली कन्या का चित्र मँडरा रहा था।

बड़े ही उदास चित्त से रघुनाथ घर पहुँचा।

[4]।

गाँव पहुँचने के तीसरे दिन रघुनाथ सवेरा होते ही घूमने को निकला। पहाड़ी जमीन, जहाँ रास्ता देखने में कोस-भर जँचे और चाहे उसमें दस मील का चक्कर काट लो बिना पानी सींचे हुए हरे मखमल के गलीचे से ढकी हुई जमीन उस पर जंगली गुलदाऊदी की पीली टिमकियाँ और वसंत के फूल आलूबोखारे और पहाड़ी करौंदे की रज से भरे हुए छोटे छोटे रंगीले फूल जो पेड़ का पत्ता भी न दिखने दें क्षितिज पर लटके हुए बादलों की सी बरफीले पहाड़ों की चोटियाँ जिन्हें देखते आँखें अपने आप बड़ी हो जाती और जिनकी हवा की साँस लेने से छाती बढ़ती हुई जान पड़ती नदी से निकली हुई छोटी छोटी असंख्य नहरें जो साँप की से चक्कर खा-खाकर फिर प्रधान नदी की पथरीली तलेटी में जा मिलती—ये सब दृश्य प्रयाग के ईंटों के घर और कीचड़ की सड़कों से बिल्कुल निराले थे। चलते-चलते रघुनाथ का मन नहीं भरा और घाटी के उतार-चढ़ाव की गिनती न करके वह नदी की

चक्करों की सीध में हो लिया। एक ओर आम के पेड़ थे जो बौरों और कैरियों[1] से लदे हुए थे, उनके सामने धान के खेत थे जिनमें से पानी खिलखिल-खिलखिल करता हुआ टिघल रहा था। कहीं उसे कँटीली बाड़ों के बीच में होकर जाना पड़ता था और कहीं छोटे-छोटे झरने जो नदी में जा मिले थे, लाँघने पड़ते थे। इन प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेता हुआ हमारा चरित्रनायक नदी की ओर बढ़ा।[2]

इस समय वहाँ कोई न था। रघुनाथ ने एक अकृत्रिम घाट—चौड़ी शिला—पर खड़े होकर नदी की शोभा देखी और सोचा कि हजामत बनाकर नहा-धोकर घर चलें। नयी सभ्यता के प्रभाव से सेफ्टीरेज़र और साबुन की टिकिया सफरी कोट की जेब में यों ही उपर की पाकेटबुक में एक आईना भी निकल पड़ा। रघुनाथ उसी शिला-फलक पर बैठ गया और अपने मुख-रूपी आकाश पर छाये हुए कोमल बादलों को मिटाने के लिए अमेरिका के इस जेबी वज्र को चलाने लगा।

कवियों का सोचने का समय पाखाने में मिलता है और युवाओं को स्वयं हजामत करने में। यदि नाई होता तो संसार के समाचारों से वही मगज चाट जाता है। इसकी वैज्ञानिक युक्ति मुझे एक थियासोफिस्ट ने बतायी थी। वह बहुत से तर्क और कुतर्कों में सिद्ध कर रहा था कि पुरानी चालों में सूक्ष्म वैज्ञानिक रहस्य भरे पड़े हैं। यहाँ तक कि माता बच्चे के सिर में नजर से बचाने के लिए जो काजल का टीका लगा देती है अथवा दूध पिलाये पीछे बच्चे को धूल की चुटकी चटा देती है—इसका भी वह बिजली के विज्ञान से समाधान कर रहा था। उसने कहा कि हजामत बनाते या बनवाते समय रोम खुल जाने से मस्तिष्क तक के स्नायु तारों की बिजली हिल जाती है और वहाँ विचार शक्ति की खुजलाहट पहुँच जाती है। अस्तु।

रघुनाथ की खुजलाहट का आरम्भ यों हुआ कि यह नदी सहस्रों वर्षों से यों ही बह रही है और यों ही बहती जायगी। किनारे के पहाड़ों ने, ऊपर के आकाश ने और नीचे की मिट्टी ने उसको यों ही देखा है और यों ही वे उसे देखते जायेंगे। यही क्या नदी का प्रत्येक परमाणु अपने आगे वाले परमाणु की पीठ को पीछे वाले परमाणु के सामने देखता जाता है। अथवा क्या पहाड़ को या तलैटी को नदी की खबर है? क्या नदी के एक परमाणु को दूसरे की खबर है? मैं यहाँ बैठा हूँ इन परमाणुओं को, इन पत्थरों को, इन बादलों को मेरी क्या खबर

1 छोटे कच्चे आम। 2 'वाले के' से लेकर इस समय तक की तीन-पंक्तियाँ अप्राप्य होने पर ये तीन पंक्तियाँ जोड़ी गयी हैं।

—सम्पादक

है ? इस समय आगे-पीछे नीचे ऊपर कौन भरी परवाह करता है ? मनुष्य अपने घमण्ड में त्रिलोकी का राजा बना फिर, उसे अपने आत्माभिमान के सिवा पूछना ही कौन है ? इस समय मेरा यह क्षौर[19] बनाना किसके लिए ध्यान देने योग्य है ? किसे पड़ी है कि मेरी लीलाओं पर ध्यान रक्खे।

इसी विचार की तार में ज्योंही उसने सिर उठाया त्योंही देखा कि कम-से कम एक व्यक्ति को तो उसकी लीलाएँ ध्यान योग्य हो रही थी जो उनका अनुकरण करती थी। रघुनाथ क्या देखता है कि वही पानी पिलाने वाली लड़की सामने एक दूसरी शिला पर बैठी हुई है और उसकी नकल कर रही है।

उस दिन की हँसी की लज्जा रघुनाथ के जी से नहीं हटी थी। वह लज्जा और सकोच के मारे यही आशा करता था कि फिर कभी वह लड़की मुझे न दिखायी पड़े और अपनी ठठोलियों से मुझे तग न करे। अब, जिस समय वह यह सोच रहा था कि मुझे कोई नहीं देख रहा है वही लड़की हजामत बनाने की नकल कर रही है। उसने हाथ में एक तिनका ले रखा है। जब रघुनाथ उस्तरा चलाता है तब वह तिनका चलाती है। जब रघुनाथ हाथ खींचता है तब वह तिनका रोक लेती है।

रघुनाथ ने मुँह दूसरी ओर किया। उसने भी वैसा ही किया। रघुनाथ ने दाहिना घुटना उठाकर अपना आसन बदला। वहाँ भी ऐसा ही हुआ। रघुनाथ ने बायीं हथेली धरती पर टेककर अँगड़ाई ली। लड़की ने भी वही मुद्रा की। ये सब प्रयोग रघुनाथ ने यह निश्चय करने के लिए ही किये थे कि यह लड़की क्या वास्तव में मेरा मखौल कर रही है। उसने हलका-सा खँखारा। रघुनाथ ने उतना ही खँखारना उधर से सुना। अब सन्देह नहीं रह गया।

ऐसे अवसर पर बुद्धिमान लोग जो करना चाहते हैं वही रघुनाथ ने किया। अर्थात् वह मुँह बदल कर अपना काम करता गया और उसने विचार किया कि मैं उधर न देखूँगा। इस विचार का वही परिणाम हुआ जो ऐसे विचारों का होता है अर्थात् दो ही मिनट में रघुनाथ ने अपने को उसी ओर देखते हुए पाया। अब लड़की ने भी अपना आसन बदल लिया था। रघुनाथ ने कई बार विचार किया कि मैं उधर न देखूँगा, पर वह फिर उधर ही देखने लगा। आर्ये, जो मानो अभी पानी होकर बह जायँगी सफेद हल्का नीला कोआ जिसमें एक प्रकार की चचलता हँसी और घृणा तैर रही थी।

---

19 हजामत।

यह लडकी या पिण्ड नहीं छोडेगी। मैंने इसका क्या बिगाडा है ? इससे पूछू तो फिर बैस बनायगी ? पूरे घर आज तो अकेली यही है। इसकी चाटो पर साधुवाद करने के लिए महिला मण्डल तो नही है। यह सोचकर रघनाथ न जोर से खेंखारा। वही जवाब मिला। उसने हाथ बढाकर अँगडाई ली। वहा भी कगा तोडे गये। रघुनाथ ने एक पत्थर उठाकर नदी मे फेंका, उधर से ढेला फेंका गया और खलब करके पानी मे बोला।

यह विना वचना की छेड रघुनाथ से सही न गयी। उसने एक छोटी-सी ककरी उठाकर लडकी की शिला पर मारी। जवाब म वैसी ही एक ककरी रघुनाथ की शिला म आ बजी। रघुनाथ ने दूसरी ककरी उठाकर फेंकी जो लडकी के समीप जा पडी। इस पर एक ककरी आकर रघुनाथ की पाकेट-बुक के आईन पर पट से बोली और उस फोड गयी। रघुनाथ कुछ चिप गया उसकी हिम्मत कुछ बढ गयी, अबके उसने जो ककरी मारी कि वह लडकी के हाथ पर जा लगी।

इस पर लडकी न हाथ को झट से उठाया और स्वय उठी। जहाँ रघुनाथ बैठा था वहा आयी और उसके देखत देखत उसके सामान से टापी उस्तरा और पाकेट बुक तथा साबुन की बट्टी को उठाकर नदी की ओर बढी। जितना समय इस बात को लिखने और बाचन लगा है, उतना समय भी नही लगा कि उसन सबको पानी म फेंक दिया। रघुनाथ उसके हाथ को नदी की ओर बढत हुए देख, उसका तात्पय समझ कर किंकर्त्तव्य-विमूढ-सा हो ज्योंही दो कदम आग धरता है कि पकाली शिला पर उसका पैर फिसला और वह धडाम से सिर के बल पानी मे गिर पडा।

रघनाथ तैरना नही जानता था यद्यपि वह मित्रो के साथ जाकर दारागज की गगा मे नहा आया करता था। परन्तु चाहे कितना ही तैराक हो, औंधे सिर पानी मे गिरने पर तो गोता खा ही जाता है। रघुनाथ का सिर पैंदे के पास पहुँचते ही उसने दो गोते खाये और सीधा होते होते उसकी सास टूट गयी। यो तो नदी म पानी रघुनाथ के सिर से कुछ ही ऊँचा था और धीरज से उसके पैर टिक जाते तो वह हाथ फटफटाकर किनारे आ लगता, क्योंकि वह बहुत दूर नही गया था। पर फिसलने की घबराहट, साँस का टूटना गले मे पानी भर जाना नीचे दलदल—इन सबसे वह भौंचक होकर बीस-तीस हाथ बढता ही चला गया। नदी की तलेटी म चट्टान थी जो पानी के बहाव से क्रमश खिरती जाती थी। वहाँ पानी भ भोला कुछ जोर से बढ कर चक्कर खाता था। वहाँ पहुँच कर, पानी कम होने पर भी हाथ-पैर

भाव था कि इस लड़की को गुस्ताखी के लिए दण्ड दूँ। रघुनाथ ने उसे दोनों बाँह डालकर पकड़ लिया। रघुनाथ के लिए स्त्री का और उस लड़की के लिए पुरुष का यह पहला स्पर्श था। रघुनाथ कुछ सोच भी न पाया था कि मैं क्या करूँ, इतने में लड़की ने मुँह उसके सामने करके अपने नखों से उसकी पीठ में और बगल में बहुत तेज चुटकियाँ काटी। रघुनाथ की बाँह ढीली हुई पर क्रोध नहीं। उसने एक मुक्का लड़की की नाक पर जमाया। लड़की सास लेत रही। इतने में दौड़ने के वेग से, जो अभी न रुका था और मुक्के से दोनों नीचे गिर पड़े। दोनों धूल में लोटमलोट हो गये।

रघुनाथ धूल झाड़ता हुआ उठा। क्या देखता है कि लड़की के नाक से लहू बह रहा है। अपना विजय का पहला आवेश एकदम से भूलकर वह पश्चात्ताप और दुःख के पाश में फँस गया। उसका मुँह पसीना-पसीना हो गया। वह चाहता था कि इन लहू की बूँदों के साथ मैं भी धरती में समा जाऊँ और उनके साथ ही अपनी आँख भूमि में गड़ा भी रहा था। परन्तु फिर क्षण में आँखें उठ आयी। लड़की अपने भीगे और धूल लगे हुए आँचल से नाक पोंछती हुई उन्हीं आँखों में वही घृणा की और पश्चात्ताप की दृष्टि डालती हुई कह रही थी—

"वाह, अच्छे मर्द हो। बने बहादुर हो। स्त्रियों पर हाथ उठाया करते हैं ?"

रघुनाथ चुप।

'वाह पिरागजी में खूब इल्म पढ़ा। स्त्रियों पर हाथ उठाते होंगे ?'

रघुनाथ ने नीचे सिर से आँखें न उठाकर कहा—

'मुझसे बड़ी भूल हो गयी। मुझे पता नहीं था कि मैं क्या कर रहा हूँ। मेरा सिर ठिकाने नहीं है। मुझे चक्कर—'

'अभी चक्कर आयेंगे। स्त्रियों पर हाथ नहीं चलाया करते हैं।"

सड़क यहाँ चौड़ी हो गयी थी। कचनार की एक बेल आम पर चढ़ी हुई थी और आम के तले पत्थरों का चबूतरा था। सुनसान था। दूर से नदी की कलकल और रह रहकर खातीचिड़े की ठक्ठक-ठक्ठक आ रही थी। इस समय रघुनाथ का घोंघापन हटने लगा और स्त्रियों की ओर से झेंप इस पिघलती हुई आँखों वाली के वचन-बाणों के नीचे भागने लगी। ढाढ़स कर उसने पूछा—

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

भागवन्ती।"

रहती कहाँ हो?"

मामी के पास वही जिसने कुएँ पर पानी नहीं पिलाया था।"

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ फिर चुप हो गया। फिर कुछ ठहरकर बोला— तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो?

'तुम्हें आदमी बनाने को। जो तुम्हें बुरा लगा हो, तो मैंने भी अपने किये का लहू बहाकर फल पा लिया। एक सलाह दे जाती हूँ।"

क्या!

कल से नदी नहाने मत जाना।"

'क्यों?'

गीत ग्रामोफोन तो कोई बजाने वाला नहीं मिलेगा।'

रघुनाथ अपने पर सम्हलकर बोला अब कोई मेरी जान बचायेगा तो मैं पीछा नहीं करूँगा दो गाली भी सुन लूँगा।"

इसलिए नहीं मैं आज अपने बाप के यहाँ जाऊँगी।"

तुम्हारा घर कहाँ है?'

'जहाँ अनाड़ियों के डूबने के लिए कोई नदी नहीं है।"

"हूँ! फिर वही बात लायी। तो वहाँ पर चिल्लाने वालों के भागने के लिए रास्ता भी न होगा।'

जी यहाँ जो मैं आपके हाथ आ गयी।'

नहीं तो?'

'काँटा न लगता तो चिरागजी तक दौड़ते तो हाथ न आती।'

काँटा! काँटा कैसा?'

यह देखो।

रघुनाथ ने देखा कि उसके दाहिने पैर के तलवे में एक काँटा चुभा हुआ है। उसको यह सूझी कि यह मेरे दोष से हुआ है। बालिका के सहारे वह घुटने के बल बैठ गया और उसका पैर खींचकर रूमाल से धूल झाड़कर काँटे को देखने लगा।

काँटा मोटा था पैर में बहुत पैठ गया था। वह उठकर बाड़ से एक और बड़ा काँटा तोड़ लाया। उससे और पतलून की जेब के चाकू से उसने काँटा निकाला। निकालते ही लहू का डोरा बह निकला। काँटा प्रायः दो इंच लम्बा और जहरीली कँटीलों का था।

ओफ !" कहकर रघुनाथ ने कमीज की आस्तीन फाडकर उसके पाव म पट्टी वाध दी ।

बालिका चुप बैठी थी । रघुनाथ काट को निरख रहा था ।

अब तो दर्द नही ?'

कोई एहसान थोडा है तुम्हारे भी काटा गड जाय तो निकलवाने आ जाना ।

अच्छा ।" रघुनाथ का जी जल गया था । यह वर्ताव !

अच्छा क्या ? जाओ अपना रास्ता लो ।

यह काटा मैं ले जाऊँगा । आज की घटना की यादगारी रहेगी ।'

मैं इसे जरा देख लूँ '

रघुनाथ न अँगूठे और तर्जनी से काटा पकडकर उसकी ओर बढाया । अपनी दो अँगुलियो से उठाकर और दूसरे हाथ से रघुनाथ को धक्का देकर लडकी हँसती-हँसती दौड गयी । रघुनाथ धूल मे एक कलामुण्डी खाकर ज्योही उठा कि बालिका खेतो को फादती हुई जा रही थी ।

अब की दफा उसका पीछा करने का साहस हमारे चरित्रनायक न नही किया । नदी तट पर जाकर कोट उठाया और चौधियाये मस्तिष्क से घर की राह ली ।

(5)

रघुनाथ क हृदय म स्त्री जाति की अजानता का भाव और उसस पृथक रहने का कुहरा तो था ही अब उसक स्थान म उद्वेगपूर्ण ग्लानि का धूम इकट्ठा हो गया था । पर उस धूम क नीचे नीचे उस चपल लडकी की चिनगारी भी चमक रही थी । अवश्य ही अपने पिछले अनुभव स वह इतना चमक गया था कि किसी स्त्री स बातें करने की इच्छा न थी परन्तु रह-रहकर उसके चित्त म उस पिघलती हुई आँखोवाली का और अधिक हाल जानने और उसके वचन-कोडे सहन की इच्छा होती थी । रघुनाथ का हृदय एक पहेली हो रहा था और उस पहेली म पहली उस स्वतन्त्र लडकी का स्वभाव था । रघुनाथ का हृदय धुएँ मे घट रहा था और विवाह के पास आते हुए अवसर को वह उसी भाव म देख रहा था, जसे चतुर्दशी मे बकरा आने-वाले नवरात्रो को देखता है ।

इधर पिताजी और चाचा वर खोज रहे थे । आसपास गाँवो मे तीन-

चार पत्नियाँ थीं जिनके पिता अधिक धन के स्वामी न होने से अब तक अपना भार न उतार सके थे और अब बृहस्पति के सिंह का बदल हो जाने को अपने नरकगमन का परवाना-सा लेकर भी आत्मघात नहीं कर रहे थे। हिन्दू समाज में धास में कुछ नहीं होता, जरूरत में सब हो जाता है। वह मैं बड़ा महाराज थलियों के मुँह खुलवाकर भी शास्त्रजड़ लोगों से यह नहीं कहला सकता कि अष्टवर्षा भवेद् गौरी' पर हरताल लगा दो। उलटा अष्ट का अर्थ गर्भाष्टम करके सात वर्ष तीन महीने की आयु निकाल बैठेंगे। परन्तु कभी शुक्र का छिपना और कभी बृहस्पति का भगना कभी घर का न मिलना और कभी पहले पता न होना कभी नाड़ी विरोध और कभी कुछ—समझदार आत्मा चाहे तो कन्या को चौदह पन्द्रह वर्ष की करके काशीनाथ से लेकर आजकल के महामहोपाध्यायों तक को अँगूठा दिखला सकता है।

दो घर तो ज्योतिषी ने उड़ा दिये। तीसरे के बारे में भी उन्होंने लत्ता-पात करना चाहा था, पर कुछ तो ज्योतिषी के डाकखाने के द्वारा मनीआर्डर का यहाँ पर प्रभाव पड़ा और कुछ रघुनाथ के पिता के इस बिहारी के दोहे के पाठ का ज्योतिषीजी पर—

सुत पितु मारक जोग लखि
उपज्यो हिय अति सोग।
पुनि विहँस्यो गुन जायसी
सुत लखि जारज जोग।

विधि मिल गयी। झण्डीपुर में सगाई निश्चित हुई। बीस दिन पीछे बरात चढ़ेगी और रघुनाथ का विवाह होगा।

(6)

कन्यादान के पहले और पीछे वर-कन्या को ऊपर एक दुशाला डालकर एक दूसरे का मुँह दिखाया जाता है। उस समय दुलहा दुलहिन जैसा व्यवहार करते हैं उससे ही उनके भविष्य दाम्पत्य-सुख का थर्मामीटर मानने वाली स्त्रियाँ बहुत ध्यान से उस समय के दोनों के आकार-विकार को याद रखती हैं। जो हो झण्डीपुर की स्त्रियों में यह प्रसिद्ध है कि मुँह दिखौनी के पीछे लड़के का मुँह सफेद फक हो गया और विवाह में जो कुछ होम वगैरह उसने किये वे पागल की तरह। मानो उसने कोई भूत देखा था। और लड़की ऐसी गुम हुई कि उसे काटो तो लून नहीं। दिन-भर वह चुप रही और बिड-राथी आँखों से जमीन देखती रही, मानो उसे भी भूत दिख रहे हों। स्त्रियाँ

न इन लक्षणों को बहुत अशुभ माना था।

दुलहिन डोल मे विदा होकर ससुराल आ रही थी। रघुनाथ घोडे पर था। दोपहर चढने से कहारों और बरातियों ने एक बड के छाया के नीचे बावडी के किनारे डेरा लगाया कि रोटी-पानी करके और धूप काटके चलेंगे। कोई नहाने लगा कोई चूल्हा सुलगाने लगा। दुलहिन पालकी का पर्दा हटाकर हवा ले रही थी और अपने जीवन की स्वतन्त्रता के बदले मे पायी हुई सुनहरी हथकडियो और चादी की बडियो को निरख रही थी। मनुष्य पहले पशु है फिर मनुष्य। सभ्यता या शान्ति का भाव पीछे आता है पहले पाशविक बल और विजय का। रघुनाथ ने पास आकर कहा—

क्या कहा था ऐसे मर्द के आगे कौन लहँगा पसारेगी ?

सिर पालकी के भीतर करके बालिका ने परदा डाल लिया।

रघुनाथ ने यह नही सोचा कि उसके जी पर क्या बीतती होगी। उसने अपनी विजय मानी और उसी की अकड मे बदला लेना ठीक समझा।

हाँ, फिर तो कहना इस बुद्धू के आगे कौन लहँगा पसारेगी ?

चुप।

'क्या, अब वह कँची सी जीभ कहाँ गयी ?

चुप।

कहाँ तो रघुनाथ छेड मे चिढता था अब कहाँ वह स्वयं छेडने लगा। उसकी इच्छा पहले तो यह थी कि यह बोली कभी न सुनूं परन्तु अब वह चाहता था कि सुन फिर वैसे ही उत्तर मिलें। विवाह के पहले प्रथम्भे के पीछे उसने दु ख की आह के साथ ही-साथ एक सन्ताप की आह भी भरी थी क्योंकि पहले दिनों की घटनाओं ने उसके हृदय पर एक बडा अद्भुत परिवर्तन कर दिया था।

'कहो जी अब प्रयाग वालो की अकल ठिकाने आयी हो ? अब इतनी बातें कैसे सुनी जाती हैं ?'

मैं हाथ जोडती हू, मुझसे मत बोलो। मैं मर जाऊँगी।

तो नदी में डूबते हुए बुद्धुओं को कौन निकालेगा ?'

अब रहने दो। यहाँ से हट जाओ। चले जाओ।

क्या ?'

क्या क्या, अब इस चक्की में ऐसा ही पिसना है जनम-भर का रोना है, जनम-भर का रोना है।

'नहीं, मुझे अकल सीखने का—' रघुनाथ ने व्यंग्य से आरम्भ किया था, पर इतने में एक कहार चिलम में तमाखू डालने आ गया। भूमिका की सफाई बिना कहे और बिना हुए ही रह गयी।

[7]

हिन्दू घरों में, कुछ दिनों तक, दम्पत्ति चोरों की तरह मिलते हैं। यह संयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली का वर या शाप है। रघुनाथ ने ऐसे चोरी के अवसर आगरे आकर ढूँढ़ने आरम्भ किये, पर भागवन्ती टल जाती थी। उसने रघुनाथ को एक भी बात कहने का या सुनने का मौका न दिया।

जुलाई में रघुनाथ इलाहाबाद जाकर बड़े इयर में भरती हो गया। दशहरे और बड़े दिन की छुट्टियों में आकर उसने बहुतेरा चाहा कि दो बातें कर सके, पर भागवन्ती उसके सामने ही नहीं होती थी। हाँ कई बार उसे यह सन्देह हुआ कि वह मेरी आहट पर ध्यान रखती है और छिप-छिपकर मुझे देखती है, पर ज्योंही वह इस सूत पर आगे बढ़ता कि भागवन्ती लोप हो जाती।

पढ़ने की चिन्ता में विघ्न डालने वाली अब उसकी यह नयी चिन्ता लगी। यह बात उसके जी में जम गयी कि मैंने अमानुष निर्दयता से और बोली ठोली से उसके सीधे हृदय को दुखा दिया है। परन्तु कभी-कभी यह सोचता कि क्या दोष मेरा ही है? उसने क्या कम ज्यादती की थी? जो तान-तिशने उस समय उसके हृदय को बहुत ही चीरते हुए जान पड़े थे वे अब उसकी स्मृति में बहुत प्यारे लगने लगे। सोचता था कि मैं ही जाकर क्षमा माँगूँगा। जिन आँखों ने उसका पीछा किया था उन्हें बाँधकर उसके सामने पड़कर कहूँगा कि उस दिन वाली चाल में मुझे कुचलती हुई चली जा। अथवा यह कहूँगा कि उसी नदी में मुझे ढकेल दे। यों तरह तरह के तर्क-वितर्कों में उसका समय कटने लगा। न हॉकी में अब उसकी कदर रही और न प्रोफेसर की आँख कमी रही। उसी कीचड़ लगे हुए पतलून को मेज पर रखकर सोचता सोचता, सोचता रहता।

होली की छुट्टियाँ आयीं। पहले सलाह हुई कि घर न जाऊँ, काशी में एक मित्र के पास ही छुट्टियाँ बिताऊँ। उस मित्र ने प्रसंग चलने पर कहा हाँ भाई, ब्याह के पीछे पहली होली है तुम काहे को चलते हो! वह रघु-

नाथ के हृदय के भाव को क्या समझ सकता था ? रघनाथ ने हँसकर बात टाल दी। रात को सोचा कि चलो छुट्टियाँ में बाटिंग में ही रहूँ, पास ही पब्लिक लाइब्रेरी है दिन कट जायेंगे। रात को जब सोया तो सिसकती हुई आँखें वही नाक से बहता हुआ खून और वही आँसुओं से न ढँकने वाली हँसी ! नींद न आ सकी। जैसे कोई सपने में चलता है वैसे वहाँ से हाथ मेवर टिकट लेकर गाड़ी में उठ गया। पता नहीं कि मैं किधर जा रहा हूँ। चेत तब हुआ जब कुली 'टुँडला टुँडला' चिल्लाये। रघनाथ चौंका। अच्छा, जो हो अब की दफा फिर उद्योग करूँगा। यों कहकर हृदय को दृढ़ करके घर पहुँचा।

होली का दिन था ! जमींदार पूर्णिमा को चारों के लिए घर के दरवाजे खुला छोड़कर हिंदू सोते हैं बस माता-पिता टहल गये थे। माँ पकवान पका रही थी और बाप—खैर बाप भी कहीं थे। रघनाथ भीतर पहुँचा। भागवती सिर पर हाथ धरे हुए कोने में बैठी थी। उसे देखते ही खड़ी हो गयी। वह दरवाजे की तरफ बढ़ने न पायी थी कि रघुनाथ बोला 'ठहरो बाहर मत जाना।'

वह ठहर गयी। घूँघट खींचकर कान का पाढा के कान का देखने लगा।

'कहो कैसी हो ? आज तुमसे बातें करनी हैं।'

चुप।

प्रसन्न रहती हो ? कभी मेरी भी याद करती हो ?'

चुप।

'मेरी छुट्टियाँ तीन ही दिन की हैं।'

चुप।

'तुम्हें मेरी कसम है चुप मत रहो, कुछ बोलो तो जवाब दो—पहले की तरह तान ही से बोलो मेरी शपथ है सुनती हो ?

'मेरे कानों में पानी थोड़ा ही भर गया है।'

'हाँ बस, यों ठीक है, कुछ ही कहो पर कहती जाओ। अच्छा होता, यदि तुम मुझे उस दिन न निकालती और डूब जाने देती।

अच्छा होता यदि मेरा काँटा न निकालते और पक कर मैं मर जाती।'

'तुमने कहा था कि कोई एहसान थोड़ा है, काटा गड़ जाय, तो मैं भी निकाल दूँगी।'

हाँ, निकाल दूँगी।

कैसे ?'

उसी काटे से।'

उसी काँटे से ! वह है कहां ?

मेरे पास।'

क्यों ?—कब से।

जब से पतलून बक्स में बन्द होकर भागरे गयी तब से।'

न मालूम पीठी का बान कैसा अच्छा था, निगाह उस पर से नहीं हटी। शायद तात गिनी जा रही थी।

'अनाड़ी की बात की नकल करती हो ?'

गिनती पूरी हो गयी। अब अपने नखों की बारी आयी।

'क्यों, फिर चुप ?

हां !'—नखों पर से ध्यान नहीं हटा।

रघुनाथ ने छत की ओर देखकर कहा—'अनाड़ियों की पीठ नख आजमाने के लिए अच्छी होती है।'

नख छिपा लिये गये।

काँटा निकालोगी ?'

हां !

काँटा छत में थोड़ा ही है।

तो कहाँ है ?'

मैं तो अनाड़ी हूँ मुझे लल्लो पत्तो करना नहीं आता, साफ कहना जानता हूँ सुनो !' यह कहकर रघुनाथ बढ़ा और उसने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये।

उसने हाथ नहीं हटाये।

उस समय मैं जंगली था, वहशी था अधूरा था। मनुष्य जब तक स्त्री की परछाई नहीं पा लेता है तब तक पूरा नहीं होता। मेरे बुढ़ापन को क्षमा करो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम का एक भयंकर काँटा गड़ गया है। जिस दिन तुम्हें पहले-पहल देखा उस दिन से वह गड़ रहा है और अब तक गड़ा जा रहा है। तुम्हारी प्रेम की दृष्टि से भरा यह शूल हटेगा।

घूँघट के भीतर, जहाँ आँखें होनी चाहिए, वहाँ कुछ गीलापन दिखा।

'देखो, मैं तुम्हारे प्रेम के बिना जी नहीं सकता। मेरा उस दिन का रूखापन और जंगलीपन भूल जाओ। तुम मेरी प्राण हो, मेरा काँटा निकाल दो।'

रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर पर डालकर उसे अपनी ओर खींचना चाहा। मालूम पड़ा कि नदी के किनारे का किला, नींव के गल जाने से, धीरे-धीरे धँस रहा है। भागवंती का बलवान् शरीर निस्सार होकर, रघुनाथ के कन्धे पर झूल गया। कन्धा आँसुओं से गीला हो गया।

मेरा कसूर—मेरा गँवारपन—मैं उजड्ड—मेरा अपराध—मेरा पाप, मैंने क्या कह डा—डा—डा—आ—' घिग्घी बँध चली।

उसका मुँह बन्द करने का एक ही उपाय था। रघुनाथ ने वही किया।

लेखन काल 1911—15

उसने कहा था।

(कहानी)

(१)

बड़े बड़े शहरों के इक्के गाड़ी वालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब कि बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की

निकट / नानी से अपना/ [निकट] संबंध स्थिर करते हैं ~~कभी उसके पर~~ ~~गुल्ले अँखों के ढकने को लगाने वाले परिश्रम दिखाते हैं~~ कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं और कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसाजी' 'हटो भाई जी' 'ठहरना भाई' 'आने दो लालाजी' / कहते हुए सफेद फेंटों खच्चरों और बत्तकों,

'हटो बाछा', (बाछा)

१ [illegible]

उसने कहा था

[1]

बडे-बडे शहरों के इक्के गाडीवालों की जबान के कोडों से जिनकी पीठ छिल गयी है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बडे-बडे शहरों की चौडी सडकों पर घोडे की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के-वाले कभी घोडे की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं कभी राह चलते पैदलों की आंखों के न होने पर तरस खाते हैं कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और ससार-भर की ग्लानि निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तग चक्करदार गलियों में हरएक लड्ढी वाले (गाडी वाले)[1] के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमडाकर, 'बचो खालसाजी' 'हटो भाईजी' 'ठहरना भाई' 'आने दो लालाजी' 'हटो बाछा' कहते हुए सफेद फेटों खच्चरों और बतकों गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पडे। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढिया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं— हट जा, जीणे जोगिए, हट जा, करमा वालिए, जा हट जा पुत्ता प्यारिए, बच जा लबी वालिए!' समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है लम्बी उमर तेरे सामने है तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ? —बच जा।

ऐसे बम्बू कार्टवालों के बीच में होकर एक लडका और लडकी चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान

1 गाडी।

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के आया हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है।'

इतने में दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकरा कर पूछा—'तेरी कुड़माई (सगाई) हो गई?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कह कर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे तीसरे दिन सब्ज़ीवाले के यहाँ या दूधवाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो तीन बार लड़के ने फिर पूछा 'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की [illegible] लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली 'हाँ हो गई'।

'कब?'

'कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की सीध ली। [illegible]

[illegible]

घर पहुँचा।

पडता था कि दोना सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई क लिए बडियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापडो की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ है।"

"मगरे म—और तेरे।"

"माझे म, यहाँ कहाँ रहती है ?

'अतरसिंह की बैठक म, व मेरे मामा होते हैं।'

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबजार मे है।"

इतने म दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनो साथ साथ चले। कुछ दूर जाकर लडके ने मुसकराकर पूछा—

'तेरी कुडमाई[2] हो गयी ?" इस पर लडकी कुछ आखें चढाकर 'धत्' कह कर दौड गयी और लडका मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहाँ या दूध वाले के यहा अकस्मात् दोनो मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लडके ने फिर पूछा तेरी कुडमाई हो गयी ? और उत्तर मे वही धत्' मिला। एक दिन जब फिर लडके ने वैसे ही हँसी म चिढाने के लिए पूछा तब लडकी, लडके की सम्भावना के विरुद्ध बोली —' हाँ हो गयी।"

"कब।"

"कल—देखते नही यह रेशम से कढा हुआ सालू[3]।" लडकी भाग गयी। लडके ने घर की राह ली। रास्ते मे एक लडके को मोरी मे ढकेल दिया, एक छाबडी वाले[4] की दिन-भर की कमाई खोयी, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले म दूध उडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पायी। तब कहीं घर पहुँचा।

[2]

'राम-राम, यह भी कोई लडाई है। दिन-रात खदको म बैठ हड्डियाँ अकड गयी। लुधियाने स दस गुना जाडा, और मेह और बरफ ऊपर से। पिंडलियो तक कीच मे धँसे हुए हैं। गनीम[5] कही दिखता ही नही —घण्टे दो घण्टे मे कान के परदे फाडने वाले धमाके के साथ सारी खदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पडती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई

2 सगाई 3 ओढनी 4 खोमचे 5 दुश्मन

'ऐसे मैं समझता ही न होऊँ। इस पर तुम कहते होगे खन्दक में उठते हो और आप सिपाही के प्यारे बना करते हो। (उधर ... के पेड़ों पर आम पहाड़ से आते हैं। अपने घरों के लड़कों के गोदों पर सो सुनते हो, आप खंदक में पड़े रहते हो। यही तुम - मारे जा जाना। आम का है मौत है)

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए (आँगन के) आम के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरासिंह ... ने त्योरी चढ़ाकर कहा — 'क्या मरने मारने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरक! हाँ भाइयो कैसे —

दिल्ली शहर तें पिशौर नुं जांदिए
कर लेणा लौंगां दा बपार मड़िए,
कर लेणा नाड़ेदा सौदा अड़िए ——
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुं।
कद्दू बणया वे मजेदार गोरिए
हुण लाणा चटाका कदुए नुं॥

सारी खन्दक इस गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हैं।

लटे। नगरकोट का जलजला[6], सुना था, यहाँ दिन म पचीस जलजले होते ह। जो कही खदक म बाहर साफा या कुहनी निकल गयी तो चटाक स गोली लगती है। न मालूम वइमान मिट्टी म लेट हुए हैं या घास की पत्तियो म छिप रहत हैं।"

'लहनासिह और तीन दिन हैं। चार तो खदक म बिता ही दिये। परसो 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथा झटका[7] करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहग। उस फरगी[8] मम क बाग मे—मखमल की सी हरी घास ह। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहत हैं दाम नही लेती। कहती है तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आय हो।'

'चार दिन तक पलक नही झँपी। बिना फेरे घोडा बिगडता है और बिना लडे सिपाही। मुझे तो सगीन चढाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जमना का अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की दहली पर मत्था टकना नसीब न हो। पाजी कही क कला के घोडे सगीन देखत ही मुँह फाड देते हैं और पर पकडन लगत हैं। यो अँधेरे मे तीस-तीस मन का गोला फेंकते है। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जमन नही छोडा था। पीछे जनरल न हट आन का कमान दिया, नही तो—'

"नही तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यो?" सूबदार हजारीसिह ने मुसकुराकर कहा—'लडाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नही चलत। बडे अफसर दूर की सोचत हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ गय तो क्या होगा?"

"सूबेदारजी सच है" लहनासिह बोला—'पर करें क्या? हड्डियो म जो जाडा घँस गया है। सूय निकलता नही और खाई मे दोनो तरफ से चब की बावलिया के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

"उदमी[9] उठ, सिगडी मे कोले डाल। बजीरा, तुम चार जन बाल्टिया लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिह, शाम हो गयी है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।" यह कहत हुए सूबेदार सारी खदक मे चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिह पलटन का विदूषक था। बाल्टी मे गदला पानी भरकर

---

6 भूकम्प 7 बकरा मारना 8 फ्रेंच 9 उद्यमी।

आध घंटे के अन्दर-अन्दर वे आ पहुँचीं। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाएँगे इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जाएगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। सूबेदार लहना को छोड़कर जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—

"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनीजी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते

खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला — मैं पाधा[10] बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा— अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

हाँ, देश क्या है स्वर्ग है! मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

'लाडोहारां[11] को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलानेवाली फरंगी मेम—'

चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।"

'अच्छा अब बोधसिंह कैसा है?'

अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी[12] के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और 'निमोनिया' से मरने वालों को मुरब्बे[13] नहीं मिला करते।

मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा— क्या मरने-मरने की लगायी है! मरें जर्मनी और तुरक! हाँ भाइयो, कुछ गाओ। हाँ बस—

"दिल्ली शहर तें पिशौर नूँ जांदिए
कर लेणा लौंगाँ दा व्योपार मड़िए,
कर लेणा नाड़ेदा सौदा अड़िए—

---

10 पुरोहित।
11 लाडोहोरां (स्त्री का आदरवाचक शब्द)।
12 अँगीठी। 13 नयी नहरों के पास वर्ग-भूमि।

लहना का सिर अपनी गोदी में रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा। फिर बोला—

'कौन? कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, 'हाँ'।

'भइया मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।'

वजीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।

वजीरासिंह के आँसू टप टप टपक रहे थे।

* * *

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा——

फ्रान्स और बेलजियम — ६८वीं सूची — मैदान में घावों से मरा — नं ७७ सिख राइफल्स — जमादार लहनासिंह।

श्रीचन्द्रधर शर्मा

(आय) लाणा चटाका कदुए नूँ ।
कद्दू बणयाए मजेदार गोरिए
हुण लाणा चटाका कदुए नूँ ॥"[15]

कौन जानता था कि दाढियो वाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चे का गीत गायेंगे, पर सारी खदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गय मानो चार दिन से साते और मौज ही करत रहे हो ।

[३]

दो पहर रात गयी है । अँधेरा है । सन्नाटा छाया हुआ है । बोधसिंह खाली बिसकिटो के तीन टिना पर अपने दोना कबल बिछाकर लहनासिंह के दो कबल और एक बरानकोट[16] ओढकर सो रहा है । लहनासिंह पहरे पर खडा हुआ ह । एक आँख खाई के मुह पर है और एक बोधसिंह के दुबल शरीर पर । बोधसिंह कराहा ।

क्या बोधा भाई क्या है ?"

पानी पिला दो ।'

लहनासिंह न कटोरा उसके मुँह स लगाकर पूछा—

'कहो, कैसे हो ? '

पानी पीकर बोधा बोला— कँपनी छुट रही है । रोम-रोम मे तार दौड रह है । दात बज रह हैं ।'

' अच्छा मेरा जरसी पहन लो ।

'और तुम ?"

'मेरे पास सिगडी है और मुझे गर्मी लगती है । पसीना आ रहा है ।'

"ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए—"

'हाँ याद आयी । मेरे पास दूसरी गरम जरसी है । आज सबेर ही आयी है । विलायत से मेमे बुन-बुनकर भेज रही हैं । गुरु उनका भला करें ।" यो कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारन लगा ।

'सच कहते हो ?'

'और नही झूठ ?' यो कहकर नाही करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता-भर पहनकर पहरे पर आ खडा हुआ । मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी ।

---

15 ऐ दिल्ली शहर से पेशावर को जान वालो ! मण्डी (बाजार) मे लौंगो का व्यापार कर लेना । अरी ! नाडे का सौदा भी कर लेना । ओय । अब हमे कद्दू चखना है । ऐ गोरे बणवाली ! कद्दू अत्यन्त स्वादिष्ट पका है ! अब हमें कद्दू चखना है ।

16 ओवरकोट ।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आयी--'सूबेदार हजारासिंह!'

'कौन? लपटन साहब? हुकुम हुजूर!' कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

देखो इसी दम धावा करना होगा। मील-भर की दूरी पर पूरब में कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से जियादह जर्मनी नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

जो हुक्म।

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कंबल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

लो तुम भी पियो।'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—लाओ साहब।' हाथ आगे करते ही सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है! लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रजिमेंट में थे।

क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे?'

लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ? याद है पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम-आप जगाधरी जिले में शिकार करने गये थे। हाँ, हाँ—

वहीं जब आप खोते[17] पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था। बेशक पाजी कहीं का। सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्या साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मैस में लगायेंगे।'

'हां पर मैंने वह विलायत भेज दिया।'

'ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो दो फुट के तो होंगे!'

'हां, लहनासिंह दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?'

'पीता हूं साहब दियासलाई ले आता हूं।'—कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था और उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

'कौन? वजीरासिंह?'

'हां, क्यों लहना? क्या कयामत आ गयी? जरा तो आंख लगने दी होती?'

[4]

'होश में आओ। कयामत आयी है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आयी है।

'क्या?'

'लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुंह नहीं देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं। सोहरा[18] साफ उर्दू बोलता है पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।'

'तो अब?'

'अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आयें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

17 घोड़ा 18 ससुरा (गाली)।

हुकुम तो यह है कि यहीं—"

'ऐसी-तसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त यहां सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूं।'

'पर यहां तो तुम आठ ही हो !'

'आठ नहीं दस लाख। एक एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बांध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आंख ! मीन गोट्ट[19]' कहते हुए चित हो गये। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्च्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला— क्यों लपटन साहब, मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना डैम के पांच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचाने के लिए दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया— चालाक तो बड़े हो, पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आंखें

19 हाय मेरे राम (जर्मन) !

चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाव म आया था। औरता का बच्चे होन की तावीज बाँटता था और बच्चा को दवाई देता था। चौधरी के वड के नीचे मंजा[20] बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जमनीवाले बडे पडित है। वेद पढ-पढकर उसमे स विमान चलान की विद्या जान गये हैं। गौ को नही मारत। हिदुस्तान मे आ जायेंगे तो गौ-हत्या ब द कर देंगे। मडी के बनिया को बहकाता था कि डाकखाने स रुपये निकाल ला सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की डाढी[21] मूँड दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था जो मेरे गाव मे अब पर रखा तो—'

साहब की जेब मे से पिस्तौल चला और लहना की जाघ मे गोली लगी। इधर लहना की हेनरी-मार्टिनी के दो फायरो न साहब की कपाल क्रिया कर दी।

धडाका सुनकर सब दौड आये।

बोधा चिल्लाया—'क्या है ?

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि एक हडका हुआ कुत्ता आया था मार दिया' और औरो मे सब हाल कह दिया। ब दूकें लेकर सब तैयार हो गये। लहना ने साफा फाडकर घाव के दोनो तरफ पट्टिया कसकर बाधी। घाव मास म ही था। पट्टियो के कसने स लहू निकलना बद हो गया।

उतने म सत्तर जमन चिल्लाकर खाई म घुस पड़े। सिखो की ब दूको की बाढ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहा थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खडा था और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयो के शरीर पर चढकर जमन आगे घुसे आते थ। थोडे मिनटो म वे

अचानक आवाज आयी—'वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा !' और धडाधड ब दूको के फायर जमनो की पीठ पर पडने लगे। ऐन मौके पर जमन दो चक्की के पाटो के बीच मे आ गये पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे। और सामने लहनासिंह के साथियो के सगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालो न भी सगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—'अकाल सिक्खाँ दी फौज आयी ! वाह गुरुजी

---

20 खटिया। 21 दाढी।

दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा !! सत्त सिरी[22] अकाल पुरख !!! और लड़ाई खतम हो गयी। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे, या कराह रहे थे। सिखों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गयी। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया। और बाकी का साफा कसकर कमर बन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन मन-भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर आ पहुँची। फील्ड-अस्पताल नजदीक था। सुबह होते होते वहाँ पहुँच जायेंगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रखी गयीं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सवेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—'तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी की सौगन्द है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा पर'

22 सत्यश्री।

'बोधा गाडी पर लेट गया ? भला । आप भी चढ जाओ । सुनिए तो सूबेदारनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना । और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होने कहा था, वह मैंने कर दिया ।'

गाडियां चल पडी थी । सूबेदार ने चढते-चढते लहना का हाथ पकड कर कहा— तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये है । लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे । अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना । उसने क्या कहा था ?

'अब आप गाडी पर चढ जाओ । मैंने जो कहा वह लिख देना और कह भी देना ।'

गाडी के जाते ही लहना लेट गया । वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबंद खोल दे । तर हो रहा है ।'

[5]

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है । जन्मभर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं । सारे दृश्यों के रंग साफ होते है समय की धुंध बिल्कुल उन पर से हट जाती है ।

लहनासिंह बारह वर्ष का है । अमृतसर मे मामा के यहा आया हुआ है । दहीवाले के यहा सब्जी वाले के यहा हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लडकी मिल जाती है । जब वह पूछता है कि तेरी कुडमाई हो गयी ? तब *'धत्'* कहकर वह भाग जाती है । *एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने* कहा—'हा, कल हो गयी, देखते नही, यह रेशम के फूलोवाला सालू ?' सुनते ही लहनासिंह को दुख हुआ । क्रोध हुआ । क्यो हुआ ?

वजीरासिंह पानी पिला दे !'

पच्चीस वर्ष बीत गये । अब लहनासिंह न 77 राइफल्स म जमादार हो गया है । उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा । न मालूम वह कभी मिली थी या नही । सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया । वहा रेजीमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है । फौरन चले आओ । साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम जाते हैं लौटते हुए हमारे घर होते जाना । साथ चलेंगे ।

सूबेदार का गाव रास्ते म पडता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था । लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा ।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेडे[23] मे से निकल कर आया । बोला—'लहना, सूबदारनी तुमको जानती है । बुलाती है । जा मिल आ ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा । सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजीमेंट के क्वाटरो मे तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नही । दरवाजे पर आकर 'मत्था टेकना' कहा । असीस सुनी । लहनासिंह चुप ।

मुझे पहचाना ?'

नही !'

तेरी कुडमाई हो गयी ? धत्—कल हो गयी—देखते नही, रेशमी बूटोवाला सालू—अमृतसर म—'

भावो की टकराहट से मूर्च्छा खुली । करवट बदली । पसली का घाव बह निकला ।

'वजीरा पानी पिला !'—उसने कहा था ।

स्वप्न चल रहा है । सूबेदारनी कह रही है—मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया । एक काम कहती हू । मेरे तो भाग फूट गये । सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है लायलपुर म जमीन दी है आज नमकहलाली का मौका आया है । पर सरकार न हम तीमियो[24] की घघरिया पलटन क्यो न बना दी जो मैं भी सूबदारजी के साथ चली जाती ? एक बटा है । फौज मे भरती हुए उसे एक ही बप हुआ । उसके पीछे चार और हुए पर एक भी नही जिया । सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनो जाते है । मर भाग ! तुम्ह याद ह एक दिन ताग वाले का घाडा दही वाले की दूकान के पास बिगड गया था । तुमने उम दिन मरे प्राण बचाय थ । आप घोडे की लाता म चले गये थ । और मुझे उठा कर दूकान के तख्त पर खडा कर दिया था । ऐसे ही इन दोनो को बचाना । यह मेरी भिक्षा है । तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ ।'

रोती-रोती सूबदारनी ओबरी[25] म चली गयी । लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया ।

वजीरासिंह पानी पिला !'—उसन कहा था ।

× × × ×

23 जनाना । 24 स्त्रियाँ । 25 घर क अन्दर की कोठरी ।

लहना का सिर अपनी गोदी पर रखे वजीरासिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है। आठ घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

'कौन ? कीरतसिंह ?'

वजीरा ने कुछ समझ कर कहा—'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट[26] पर मेरा सिर रख ले।'

वजीरा ने वैसा ही किया।

'हां, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस अब के हाड़[27] में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आंसू टपटप् टपक रहे थे।

× × × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और बलजियम—68वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

—

26 जांघ। 27 आषाढ़।

प्रथम प्रकाशन 'सरस्वती' अक्तूबर, 1915

प्रकाण्ड पण्डित के मेधावी पुत्र स्वर्गीय योगेश्वर गुलेरी



स्व योगेश्वर शर्मा गुलेरी

(1909—1952)

श्री योगेश्वर शर्मा गुलेरी का जन्म 18 अप्रेल 1909 को जयपुर में संस्कृत व हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के घर

हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा पिता श्री चन्द्रधर जी की देखरेख म हुई। तन्नतर डी ए वी कालेज देहरादून तथा मेयो कालेज अजमेर से एफ ए और बी ए परीक्षाएँ उत्तीण की। जयपुर के राजा के आप होम सक्रेटरी रहे। मान प्रकाश टाकीज के मनेजर रूप म राजा जयपुर ने आपकी नियुक्ति की पर साहित्यिक अभिरुचिया के कारण योगेश्वर जी ने होम सेक्रेटरी व मनजर पद के काय से स्वतत्र लेखन काय को बेहतर समझा। महामना मदन मोहन मालवीय के आप प्राइवेट सेक्रेटरी भी रह। शिक्षा के दौरान योगेश्वर जी स्वनामधन्य साहित्यकार प रामच द्र शुक्ल श्री अमरनाथ झा तथा बाबू श्याम सु दरदास के घनिष्ठ सम्पक मे आए और उनस प्रिय शिष्य के नाते सम्बन्धित भी रह।

प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के दो पुत्र थे। कि तु छोटे भाई श्री शक्तिधर शर्मा गुलेरी की 28 वप म हुई असामयिक मृत्यु म श्री योगेश्वर जी अत्य त विचलित हुए। श्री शक्तिधर जी एम ए करने के बाद उन दिनो पुरातत्व विभाग म शोध अधिकारी नियुक्त थे। शक्तिधर जी के देहावसान के बाद आप 1945 मे जलवायु परिवतन के लिए जयपुर स देहरादून आए जहा उनकी पैतृक सम्पत्ति भी थी।

1946—47 म आपकी नियुक्ति महादवी कालेज देहरादून मे प्राध्यापक रूप म हुई। अग्रेजी एव अथशास्त्र आपके अध्यापन विषय थे। हि दी साहित्य सम्मलन देहरादून म गयाप्रसाद शुक्ल, वीरेन्द्र पाण्डेय और राहुल साकृत्यायन के सहयोग म हिन्दी प्रचार प्रसार का काय करते हुए आपने स्वतत्र लेखन को गति दी और 1947 से 1950 की अवधि मे योगेश्वर जी की रचनाएँ सरस्वती, सम्मेलन पत्रिका, विशाल भारत, नया समाज सरिता, कल्याण तथा विभिन्न शीपस्थ पत्र पत्रिकाओ म प्रकाशित हुई। उन दिना स्व मोहनसिंह सेंगर द्वारा सम्पादित नया समाज (कलकत्ता) के माध्यम से उनकी 7 8 कथाएँ प्रकाशित हुई। विशाल भारत, सरस्वती आदि मे उनके लेख प्रकाशित हुए। 1949 मे आपकी पुस्तक गम्भीर विषयो पर सरल विचार' प्रकाशित हुई। और इसी वप गाधीवादी अथशास्त्री जे सी कुमार अप्पा की अनेक पुस्तको का अग्रेजी से हि दी मे अनुवाद किया।

चेस्टर मकनाट की पुस्तको तथा वर्धा स प्रकाशित पुस्तकमाला के अ तगत सात पुस्तको का सफल अनुवाद आपन किया। विडम्बना उपन्यास 1951 म जयपुर से प्रकाशित हुआ। योगेश्वर जी की यह महत्वपूण कृति थी। एक दजन से अधिक कहानिया सात अनुवाद, पचास व लगभग

निबन्धों का लेखन कार्य 1947 से 1950 तक तीन वर्ष की अवधि में करके आपने अपूर्व कार्य क्षमता तथा साहित्यिक तत्परता को निभाया।

श्री योगेश्वर को स्व० पं० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ। स्व० शुक्ल जी हिन्दी के प्रोफेसर और साहित्य जगत के जाने माने प्रतिष्ठित विद्वान थे। उन्होंने पं० योगेश्वर शर्मा की रचनात्मक प्रतिभा को स्फुरित किया और अब उनका झुकाव साहित्य सेवा की ओर अधिक बढ़ने लगा।

जयपुर में उस समय अनुकूल वातावरण न मिलने तथा स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण जब श्री योगेश्वर देहरादून के नालापानी तपोवन स्थल को स्थानान्तरित हुए तो उन्होंने 22 बीघा जमीन में कृषि कार्य आरम्भ किया। सहायता के लिए मजदूर और बैल आदि रखकर बड़े परिश्रम से अपना कार्य आपने चलाया। पूरा परिवार वहां जा बसा। अत्यन्त प्राकृतिक वातावरण में वहां आम और अमरूद के दो बाग भी श्री योगेश्वर ने लगवाए। अपनी योग्यता, शिक्षा, सद्व्यवहार और कार्यशीलता के आधार पर वे वहाँ की ग्राम पंचायत के सरपंच भी बन गए। बड़ी लगन और मेहनत के साथ उन्होंने इस दायित्व को निभाया। योगेश्वर शर्मा को अध्ययन पटुता और साहित्य सृजन की प्रतिभा अपने पिता से विरासत में प्राप्त हुई थी। अपने कृषि आदि कार्यों को निभाते हुए कहानियाँ लिखने और अनेक विचार सम्पन्न प्रगतिशील विदेशी लेखकों की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद करने का क्रम भी उन्होंने अपनाया और थोड़े ही समय में हिन्दी लेखकों की अग्रिम पंक्ति में जा बैठे।

पं० योगेश्वर शर्मा को अपने अन्तिम दिन बड़े संघर्ष परिश्रम और कठिनाई से बिताने पड़े। उनके एक निकटस्थ मित्र पं० श्रीराम शर्मा प्रेम ने नया समाज (मासिक कलकत्ता) के सितम्बर 1952 के अङ्क में भावपूर्ण संस्मरण लिखे हैं जिनके निम्न उदाहरणों से उस समय का चित्र सामने उपस्थित हो जाता है

'कभी पाजामा और कभी धोती पर खुले गले का कोट पहने साइकिल सम्भाले इस असमय वृद्ध हुए व्यक्ति को नालापानी से देहरा रोड पर सुबह शाम देखा जा सकता था। शहर में नपा तुला प्रोग्राम, काम से से काम पर अगर किसी साहित्यिक के साथ छननी शुरू हो गई, तो समय असमय से अनजान—यही गुलेरी जी की विशेषता थी। अपनी बात पर

अडना उनका स्वभाव था पर वहम खत्म होते ही वे एस 'मम' पर प्रान थे कि आश्चय हाता था "।

इस अत्यधिक श्रम और चिन्ता तथा साहित्यिक सघष ने उन्ह तोड दिया और—

"18 जून को 12-30 बजे दिन मे मुझे भी श्री ब्रह्मदेव जी ने फोन पर बताया कि गुलेरी जी की हालत चिन्ताजनक है। नगर के सिविल सजन ने गले मे कैंसर बताया है। श्रीमती गुलेरी उन्ह बम्बई या पटना ले जाना चाहती हैं। उनका लडका मेरे पास आया है और चाहता है कि सिविल सजन एक बार उन्ह देख लेते, तो अच्छा होता। मैंने सिविल सजन को फोन किया ता मालूम हुआ कि वे मसूरी गए हैं। मेरे पास लोकप्रिय डॉक्टर निहाल बैठे थ। वे बोल कि गले के कैंसर का इलाज एलोपैथी क पास नही है, इसके लिए श्रम और व्यय दोना व्यथ है।

दूसरे दिन मैं और ब्रह्मदेव जी गुलेरी जी के पास पहुँचे। देहरादून के महन्त जी के दरबार का कुल एक कमरा, वही स्टोर रसोई बैठक सब कुछ। उसी मे एक खाट पर गुलेरी जी लेटे हुए थे। सारा शरीर हड्डियो का ढाचा-सा रह गया था, जिसे देखकर सिहरन होती थी। श्रीमती गुलेरी ने कान के पास मुह ल जाकर हमार आन की सूचना दी और मैं सामने आ गया। अभिवादन का उत्तर उन्होंने जरा सा सिर हिला कर दिया। उनकी वाणी सुनने के लिए मैं उनके मुख के पास झुक आया। बडे धीमे स्वर म उन्होंने कहा "श्रीराम मेरा नेचर क्योर म विश्वास है। मैं वही करता रहा और वही करते रहना चाहता हू। मगर आज भी मेरे इजक्शन इन लोगा ने लगवा दिया। मरना तो मेरा निश्चित है पर मैं अपने विश्वास को अपने से पहले मारना नही चाहता। मैं प्राकृतिक चिकित्सा करता हुआ शान्तिपूवक मरना चाहता हू। श्रीमती कहा है ? उन्ह बुलाओ'। व पास ही खडी थी, सामने आ गइ और गुलेरी जी के मुह के पास कान लगाकर सुनने लगी। वे बाले— चतुर्वेदी जी तथा दूबे जी के पत्र इन्ह दो "। फिर मुझ से बोले—'तुम इन पत्रो के आधार पर श्रीमहावीर प्रसाद पोद्दार को बुलाने की व्यवस्था करो'। मैंने दोनो पत्र पढे। एक वाट टीकमगढ से प बनारसीदास चतुर्वेदी का था जिसमे दिल्ली आए हुए श्री महावीर प्रसाद पोद्दार से मिलने को लिखा गया था। दूसरा पत्र श्री रामनारायण दूबे का था जिनका चिकित्सालय बनारस के पास किसी देहात म है। दुभाग्यवश दोनो ही सज्जनो से फोन पर बात नही हो सकी।

अगले दिन पहुँचकर देखा कि गुलेरी जी को स्वामी कृष्णानन्द जी के आश्रम में एक कुटिया बनाकर वहाँ ले जाना तय हुआ है। कुटिया के लिए 100) रुपये जो मा द भी दिए गए। पर मुझे गुलेरी जी को देखकर लगता था कि अब वे कुछ ही घंटों के मेहमान हैं। फिर भी उनकी चेतना और आत्मविश्वास पूर्ण धीमे स्वर से ज्ञात होता था कि मृत्यु और घोर निराशा में भी यह व्यक्ति 'रामजी की मरजी' के सहारे निश्चिन्त है और समझता है कि वह जो करेगा, ठीक ही करेगा। मुझे एक पल को लगा कि उस उत्तम कहानी के मुनीम जी का आत्मविश्वास इस व्यक्ति में मूर्तिमान हो उठा है। जिस दिन हमारी साहित्य संगम की बैठक में श्री गुलेरी जी ने यह कहानी पढ़ी थी, उस दिन उस पर थोड़ी चर्चा भी हुई थी। कुछ लोगों को उसमें अन्धविश्वास की गन्ध आई थी। पर मुझे तो लगा कि आत्मविश्वास के कारण ही उसमें सफलता मिली है—यद्यपि यह आत्म विश्वास अन्ध विश्वास की सीमा को छूता-सा लगता था। पर आज मेरे सामने जो यह अस्थि पंजर मात्र व्यक्ति पड़ा है, मौत को इतने निकट पाकर भी इतना गम्भीर और इतना निश्चिन्त है कि देख कर दंग रह जाना पड़ा। सेवा की मूर्ति श्रीमती गुलेरी, जो कि अपने पर स्पष्ट ही वैधव्य की छाया मंडराती देख रही थी, डबडबाई आँखों और भरे गले से बोलीं इनकी जिद ने ही बिमारी को यह रूप दे दिया है। प्राकृतिक चिकित्सा के पीछे पड़े रहे और मर्ज बढ़ता गया तथा स्वास्थ्य गिरता गया। आँसू मानो उनकी आँखों में कीच पड़े और पीड़ा ने उनका गला पकड़ लिया। पर उस महान आत्म-विश्वासी व्यक्ति की पत्नी को सान्त्वना देने का साहस हममें नहीं था। और उसी दिन वह दृढ़ विश्वासी और सिद्धान्त का पक्का व्यक्ति इस संसार से उठ गया।'

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जी तथा पं. सावरमल शर्मा से योगेश्वर जी का पत्र व्यवहार अपने पिता स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के साहित्यिक श्राद्ध के विषय में चल रहा था और योगेश्वर जी चन्द्रधर ग्रन्थावली के प्रकाशन में प्रवृत्त भी हुए किन्तु जयपुर में बिगड़ा स्वास्थ्य कठोर परिश्रम के कारण अधिक खराब रहा। योगेश्वर जी का प्राकृतिक चिकित्सा पर अडिग विश्वास था। देहरादून के महन्त और गुरू रामराय दरबार में आपकी सेवा शुश्रूषा भी हुई पर 43 वर्ष की अल्पायु में 20 जून 1952 को गले में कैंसर से देहरादून में आपका देहावसान हुआ।

1951 में साप्ताहिक हिन्दुस्तान दिल्ली द्वारा आयोजित विश्वकथा

प्रतियोगिता के अन्तगत अन्तर्राष्टीय कथा प्रतियोगिता मे आपकी दो कथाएँ रामजी की मरजी तथा जीवन का सगीत तीसरे व छठे स्थान पर पुरस्कृत हुई थी। रामजी की मरजी कथा के नायक मुनीम जी की तरह जीवन के अन्तिम दिनो वे ईश्वर में पूर्ण आस्थायुक्त, सासारिक उपलब्धिया से तटस्थ वीतरागी की तरह निष्काम रहे। अपने पिता चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (मात्र 39 वर्ष) की भाति 43 वर्ष की स्वल्पायु मे अपने अध्यवसाय तथा साहित्यिक प्रेम से जो कुछ कृतित्व योगश्वर जी दे सके, वह हिन्दी साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण देन है। प्रकाण्ड पण्डित के मेधावी पुत्र स्वर्गीय योगश्वर शर्मा गुलेरी का हिन्दी कथा साहित्य में योगदान स्मरणीय रहेगा।

जीवन का सगीत

डायरक्टर बोस के यहाँ स लोटते समय मेरा हृदय बासो उछल रहा था—'प्रब ठीक है, प्रब ठीक है।' ये शब्द मेरी वग्घी के पहियो स, मेरे चारो घोडो के परो की टाप से रह-रह कर निकल रहे थे। ये ही शब्द डायरेक्टर बोस ने कहे थ—ये ही शब्द मेरा हृदय भी दुहरा रहा था। तीन वर्षों के कठोर प्रभ्यास के बाद वही डायरेक्टर बोस न प्राज कहा था—रेखा प्रब ठीक है। प्रब ठीक है। प्रब तुम इस याग्य मालूम होती हो कि तुम्हें परदे पर उतरने की राय दूँ।

मेरी दादी जी प्रपने समय की सुप्रसिद्ध गायिका और प्रभिनत्री थी। उनको कई रियासतो स जागीर मिली थी और प्राधुनिक काल के कई डायरेक्टर उन्हें मातृवत् मानत थे। वह तथा डायरेक्टर बोस तव तक मुझे प्रकाश म नही लाना चाहत थे जब तक कि उन्ह यह विश्वास न हा जाय कि मैं दादी जी की यश पताका को नीचे न गिरन दूगी।

उनके युग म भी कुछ प्रभिनेत्रियो ने शरीर व्यवसाय करना शुरू कर दिया था। कला पर कलक लगने लग गया था। उनसे न हारने को दादी जी को कला की एकात साधना कठोर श्रम करना पडा था। वह चाहती थी कि प्राज जब कला एक ढोग मात्र रह गई है मैं वह कष्ट पहले ही पा लूँ। पहल ही इतनी साधना कर लूँ कि फिर प्रतिस्पर्धा का डर ही न रह जाय। उनके समय मे गायिकाए एव प्रभिनत्रियाँ प्रतिष्ठा से देखी जाती थी। बडे-बडे जोहरी, राजे महाराजे प्रपने जवान लडको को तमीज सीखन, सस्कृति का पाठ लेन सभ्य बनने को उनके यहाँ भेजते थे। वे सरस्वती की पुजारिनें थी, प्राज की तरह लक्ष्मी के लाडलो की पीकदानियाँ नही थीं।

मुझे धन की, दुलार की ट्रेनिंग की कमी न थी। प्रभिनय व सगीत

के प्रति रुचि मेरी विरासत थी और उस दिन जब डायरेक्टर बोस ने कहा—'अब ठीक है' और दादी जी न दो बूँद आँसू टपका दिए तब मैं निहाल हो गई।

दादी की प्रशसा पाना तो दूर किनारे रहा, उनका स तोष से बढकर किसी का प्रदशन देख लेना भी उस कलाकार का गव से सिर फिरा देता था। इतनी प्रतिष्ठा की धनी तथा नामी गरामी थी दादी जी। फिर वे दो प्रश सा कण और वह सिर पर हाथ फेरना। मैं कृतकृत्य हो गई। मेरे जीवन म अठारह वसन्त आ चुके थे। और उस समय मेरी कल्पना ने समय के चश्मे को पहन कर देखा भारत के शहर-शहर म बिजली के जगमगाते अक्षरो म दशको की हृदयश्वरी रेखा अलहड रेखा। दुख की जीवित तस्वीर रेखा। प्रेयसी रेखा। सौ दय की रानी रेखा! और न जाने क्या-क्या!

दादी जी व उनके भक्तो न उनक परामश से फैसला किया कि मुझ शकुन्तला की भूमिका म प्रथम बार फिल्म जगत म उतारा जाय। रिहसल शुरू हुए। मुझे भी चाव था और दादी जी का तो मानो वह 12 वर्षों स अरमान ही बढा आ रहा था। बस, दिन रात म कई-कई बार मुझे अभिनय करना पडता। दादी जी स्वय बजाती और मैं गाती।

एक दिन शकुन्तला के पत्र-लेखन दश्य का अभ्यास चल रहा था। दादी जी कुरसी पर कमरे के सामने बैठी थीं और मैं अधलेटी पत्रलेखन कर रही थी कि एकाएक एक युवक को कमरे की दहलीज पर ठिठकते देखा। दादी जी के बुलाने पर वह हिचकता सा अन्दर आया और उसने हाथ जोडकर उनके हाथ म एक पत्र दिया। कहना न होगा कि मैं खडी हो गई थी। मेरे लम्बे केश लहरा रहे थे। वस्त्र अस्त-व्यस्त थे और नेत्रो के आँसू गालो पर अवशिष्ट थे।

मैं बहुत ही असमय म आया प्रतीत होता हू। आप क्षमा करें मैं फिर आऊँगा। युवक ने सभ्यता से भरे स्वर म कहा। पर तब तक नानी जी ने पत्र प्राय आधा पढ लिया था। दूर वर्मा के रणक्षेत्र से भैया न दादी जी को लिखा था कि जाद्ध मे गोली लग जान स उनक साथी नरेन्द्र का जाम कट गया है और वह मेडिकल कालेज की अपनी एम डी की पढाई का शेष रहा एक वष खतम करने को बम्बई जा रहा है। दादी जी न पत्र पढकर लिफाफे मे डालते हुए कहा, 'नहीं बेटा। बठो। विक्रम के दोस्त के लिए मेरे पास कोई भी समय असमय नहीं है। यह है रेखा, विक्रम की बहन।'

उसने मुझे नमस्कार किया और दादी जी ने मुझे चाय मंगाने को कहा। दादी जी बूढ़ी थीं, साथ ही उन्होंने नाम कमा रखा था, जिसे वह कृपण में धन की तरह संजोए बैठी थीं।

क्या मजाल कि बाजार से कभी कोई भी चीज खुद खरीद कर लाएं। आज की नर्तकियों की तरह पैसकाम वालों की विज्ञापनबाजी हय मानी जाती थी। प्रसिद्धि उनके पीछे दौड़ा करती थी वह प्रसिद्धि के पीछे नहीं। यह वह युग था जब आप अभिनय या आजकल की बोली में जिन्दा नाच साढ़े पाँच रुपए में नहीं देख सकते थे। कला की कदर करते थे—राजा महाराजा रईस नवाब। उस काल की अभिनेत्रियों में रईसी होती थी दिल होता था, चरित्र होता था तथा सरस्वती की साधना की उमंग होती थी। दादी जी ने धन कमाया था और उसे संचित भी किया था। सो उनकी रईसी पूर्ववत् निभ रही थी।

दादी जी को नरेन्द्र क्या मिला, मानो भैया ही मिल गए। होस्टल से दस ही रोज के अन्दर उसका सामान उन्होंने उठवा मंगवाया और वह हमारे यहाँ रहने लगा। उसके पिता एक बड़ी रियासत के मिनिस्टर थे पर दादी जी का नाम जब नरेन्द्र ने लिखा तब उन्होंने उसे उनका कृपाभाजन बनने पर बधाई दी। दादी जी को वह अपनी मां के लिखे अनुसार मौसी कहता और वह उसे नरेन्द्र कह कर पुकारतीं। वह भी रईस घर का था। सो दोनों की खूब पटती। वह धीरे-धीरे उनका सैक्रेटरी ही नहीं अपितु परामर्शदाता बन गया था।

अक्सर मोटर कार में हम दोनों को दादी जी के व्यवहारियों को बुलाने सन्देश लाने, बाजार से चीजें लाने जाना होता। दादी जी बूढ़ी थीं और मैं जवान। वह प्रातः शाम की सैर को न जातीं, बगीचे में ही टहल लेतीं या फिर बैठकर रामायण पढ़तीं। पर वह इतनी समझदार थीं कि उन्होंने मुझे नर [redacted] के आने के बाद एक दिन भी शाम को घर नहीं रहने दिया।

उसके आने के पहले भी, इच्छा हो न हो, वह खुद मेरे लिए प्रातः शाम को बाहर निकलती ही थीं और पैदल न चलकर भी थक जाया करती थीं।

दादी जी के परिचितों के कई युवक पुत्र भी हमारे यहाँ आते थे। उन्हें वह आने देती थीं। यही उनकी कुलीनता व भद्रता का जबरदस्त प्रमाण था। पर नरेन्द्र जैसा भद्र, उस सा सुन्दर, नम्र व अल्पभाषी तथा दूसरे का ख्याल करने वाला युवक मैंने कभी नहीं देखा था। उसके नेत्रों में एक अवर्णनीय भाव था। उनमें मुझे एक मूक व्यथा, एक विनयपूर्ण आह्वान की

झलक मिलती थी। उसका लम्बा कद लम्बी-लम्बी बाह मासल गठीली देह साधी तनी रीढ़ का हड्डी, आग की निकली छाती और वह गोल भरा रोबदार चेहरा कोई भी यह न कहता कि वह डाक्टर है। वह तो कोई मिनिस्टर या फौज का जनरल लगता था। दुर्भाग्य की बात थी कि उसके गोली लगी और उसका नाम काट दिया गया। उसका उसे बहुत ही दुःख था। उसकी बाह म गोली से केवल एक छेद हुआ था और अब तो वह भी भर गया था। फौज के डाक्टरो की यह धारणा कि बाह सदा को बेकाम हो जाएगी, गलत सिद्ध हुई थी। अब दोबारा भरती की चेष्टा का अर्थ था उन डाक्टरो के फैसले पर पुनर्विचार एव देशी जर्राहा के कौशल की स्वीकृति। ब्रिटिश सरकार भारत के खजान मे नियमित रूप से नरेन्द्र को सम्राट की सेवा मे बाह का उपयोग खो दन के बदले दो हजार रुपया मासिक दे देना अधिक अच्छा और मानास्पद समझती थी।

हम दोनो एक दूसरे पर प्रथम दशन के दिन स ही फिदा थे। पुरुष होत हुए भी नरेन्द्र न जबान स या इशार स कभी कुछ नही कहा था। मैं तो कहती या करती ही क्या ?

एक दिन मगलवार को स्वय चाय पर दादी जी ने कहा अगल रविवार का तुम स्टूडियो जाओगी देखा। तुम्हारे पाट के शूटिंग प्रारम्भ हाग। मैं जाऊगा ता पहला अल्हडपने का सीन तुम स्वाभाविक तौर पर न कर सकागी। नरेन्द्र तुम इसके साथ जाना।

नरेन्द्र न मेरी आर देखा और मैंने नरेन्द्र की आर। फिर हम दोनो ने दादी जी की आँखो मे अपनी आखे डाल दी। हम दोनो नेत्रो से ही बात करत थ। दोना ही सोच रहे थे कि क्या वह उस रहस्य को जान गई हैं जा हमन एक दूसर को भी अभी तक नही बताया ह ? पर उस विख्यात अभिनेत्री क नेत्र वस ही भोले वैसे ही निष्कपट वसे ही सदा के से लगे। अपनी भ्रान्ति समझ, मैं और बातें करने लग गई। दादी जी ने अगले रविवार से अल्हडपन का अभिनय कमरे के सामने करने को कहा था। कण्व मुनि के आश्रम के सामन खडे होकर मृगछौना स वह अभिनय करना था। मैं इतनी खुश हो उठी थी कि उसी समय मैंने दादी जी के गल मे हाथ डालकर उन्ह चूम लिया था और फिर कमरे मे थिरकना। और दादी जी से 'उस रोज मैं यह पहनूगी, 'वह गाना फिर सुनलें' आदि कहकर तत्क्षण अल्हडपन का अभिनय शुरू कर दिया था। कितनी प्यारी थी वह शाम। आज भी उसकी याद मेरा ठडा खून गरम कर देती है।

मुझे, खूब याद है, उस दिन बृहस्पतिवार था और थी पूर्णिमा। साय साढ़े पाँच बजे मैं और नरेन्द्र सिनेमा जाने को निकले। टाइम छूट गया था। नरेन्द्र ने सुझाया कि पास के पार्क में चलकर बैठा जाए और हम दोनों हौज के किनारे संगमरमर पर जा बैठे। न जाने क्या हुआ कि एक क्षण की चुप्पी के बाद नरेन्द्र चुप न रह सका और फिर मैं भी न रह सकी। हम दोनों एक ओर चले गए। हम दोनों ने आलिंगन किया, चुम्बन लिए, एक क्षण में यचन लिए दिए। पास के घंटाघर की घड़ी ने दस बजाए। तब हम होश आया और हम घर चले।

हाल में दादी जी बैठी थीं। उन्होंने मेरी ओर घूरा और मेरा सर्वांग काँप उठा। अभिनय या बहाना बनाने की हिम्मत न रही। पर वाह री दादी जी! झट बोलीं मौसम के साथ सिनेमा का समय भी बदलता है। यह भूलने की सजा है। थक गई होगी। मैं खा चुकी हूँ। तुम खाना भी खा लो और सो जाओ। महाराज चला गया है। मुझे बहुत पत्र लिखने हैं। दस बज चुके हैं, खुद ही परोस लो जाकर। फिर हम दोनों ने खाना खाया। एक दूसरे के मुँह में कुछ सब्जी लगा लगा कर ग्रास दिए। बातें करते करते बारह बजा दिये।

इस बार बातें गम्भीर हुई थीं। नरेन्द्र ने स्पष्ट कहा था या तो तुम अभिनय का ख्याल छोड़ दो या मेरा। दोनों बातें मैं नहीं मान सकूँगा। मेरी पत्नी गायिका बने, यह मैं नहीं सह सकूँगा। इस युग में गायिका का स्थान हेय है। तुम्हारे जीवन की साध में बाधक न होने के विचार से ही मैं अब तक चुप रहा था। कल तक सोच लो रखो। सबेरे मुझे बता देना। तुम्हें दो में से एक चुनना है। मैं मूर्खता कर बैठा जो आज तुम्हें अपना प्रेम जता दिया। प्रेम जताकर ही थोड़े होता है। मुझे अब चले ही जाना पड़ेगा। अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है। तुम मेरा ख्याल न करो अपना करो। अपनी मानसिक शान्ति को तुम मुझे यहाँ देखकर बनाए न रख सकोगी। मैं दोबारा बर्मा की लड़ाई में दूसरे नाम से मामूली सिपाही भर्ती हो जाऊँगा। यही दोनों के लिए ठीक होगा। मुझसे ब्याह करके दादी जी का अंतिम और चिरपोषित स्वप्न नष्ट न करो। संगीत और अभिनय तुम्हारी भी साध है। मेरे लिए उसे मत मिटाओ। पर मैं तुम्हें सम्पूर्ण चाहता हूँ आधा नहीं। मेरा प्यार पागल है पर हंस या मोती चुगते हैं या फिर लंघन ही करते हैं। सुबह सवेरे उत्तर दे देना।'

मेरे अनुनय विनय का उस पर कुछ भी असर न हुआ। मेरी इस दलील का कि 'अभिनय और संगीत के बिना मैं मुरदा हो जाऊँगी तुम आध

मरी को क्या करोगे ?' उसन टालते हुए कहा था 'यही तो मेरे प्यार की परीक्षा है कि मुरदा जी उठता है या नही ?'

वह शाम कितनी मस्त थी और वह रात कितनी भयानक। मैं रात भर सो न सकी। दोनो ही मेरे प्राण थे। संगीत और अभिनय मेरे जीवन का लक्ष्य था। मेरी विरासत थी। मेरी बरसो की कमाई थी। मेरी दादी जी की आशा थी। मेरा सवस्व था। उधर उसे मैं हृदय दे चुकी थी। प्रथम दृष्टि का वह प्रम क्या छोडा जा सकता था ? प्राय एक वष मे मैं न जान कितने मन्सूब बाध रही थी। न जान कितन कुमारी हृदय-सुलभ मीठे सपन देखन की आदी हो गयी थी। उन सब को भुला देना, नरेन्द्र की और अपनी आँखो ही आँखो मे की गई बातें भुला देना यह भी असम्भव था। दोनो ही एक दूसरे के बिना अधूरे थे। पर नरेन्द्र एक के चुनने पर ही अडा था। चुनाव भी जालिम ने मुझी पर छोडा था। दो छुरियाँ थी और उसन कहा था कि एक स अपना गला काट ले। दोनो ही बधार थी। अगर एक को ले भी सकूँ तो दूसरी रेत रेत कर मेरा गला काट देगी। जब तक कट न जाए तब तक श्वास न लेने देगी।

आज भी उस रात के विचारो उसकी मानसिक अशान्ति और बेचनी को याद करती हू तो काँप उठती हू।

शुक्रवार को प्रात मैंन नरेन्द्र से सोचन को और समय मागा और शनि को भी। वह रो उठा। बोला मरी जबान टूट जाए, क्या कर डाला है मैंन।' मैंने कहा 'तुम ही जिद छोड दो नरेन्द्र।' तब वह बोला इससे दोनो सदा दुखी रहगे रेखा। मैं अपने और तुम्हारे बीच म तुम्हारी कला को भी सहन नही कर सकूगा।'

'पर मैं कला का परित्याग कर दू तो भी उसकी याद सताएगी।' मैंन कहा। 'यही तो मेरे प्यार की कसौटी है रेखा। तुम्हे कला की याद आ गई तो मरा प्यार झूठा है'—उसने कहा।

रविवार की शाम को मुझसे न रहा गया। अपनी एक मात्र आश्रय-स्थली दादी जी की गोद मे बैठकर राय मागना ही मुझे एकमात्र उपाय सूझा। शायद वह नरेन्द्र की जिद छुडा दें। नरेन्द्र उन्हे मानता भी बहुत है। वह उसके पिता को लिखें तो नरेन्द्र को मानना ही पडेगा। यही सोच कर मैं उनके पास गई।

भावो का वेग फूट पडा और मैं 'दादी जी मैं क्या करूँ ? मुझे बता-

इये कहकर उनसे लिपट गई और रोने लगी। दादी जी प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरती रही और मैं प्राय दस मिनट तक रोती रही। हृदय का उफान उस आत्मविश्वास से तनी छाती से लगकर कम हुआ तो मैंने हिचकियों मे कहा 'मैं दोनो चीजो को चाहती हूँ। उनमे से एक के बिना भी मेरा जीवन बेकार है। दोनो मिलेगी नही। बताइए मैं क्या करूँ ?

'एक को चुन लो बेटी। जिसे चुनोगी, वही दूसरे का अभाव भी पूरा कर देगी।' दादी जी बोली। 'आप समझी नही। मैं कह ही चुकी हूँ कि मैं चुन ही नही सकती, दोनो ही मेरे जीवन की साध है। मुझे दोनो चाहिए।' कुछ आवेश मे मैंने कहा। 'मैंने धूप मे बाल सफेद नही किए है रेखा। मैं समझ गई। दोनो तुझे दिला भी सकूँ, तो एक को पाकर भी न पाएगी—समझी ? मेरा कहना मान ले बेटी। एक चुन ले।' दादी जी बोली। आपको कैसे समझाऊँ दादी जी। आप समझ ही न सकेंगी कि मैं कैसे असमजस मे हूँ।' मैंने कहा। 'तुझे कुछ नही समझना पडेगा बेटी। मैं भोग बैठी हूँ।' कहते कहते दादी जी के नैनो से आँसू ढलक पडे। तेरे दादा जी ने मुझसे ब्याह के पहले कहा था कि गायिका न बन। और हम दोनो का ही ससार हो। पर मुझे भी दोनो ही चाहिए थे। तेरे दादा जी और सगीत-इनमे से चुनाव तब मेरे लिए भी असम्भव था। मैंने भी दोनो की रट लगाई थी और वह मान गए थे। मैंने दो बेलो को सींचा। जिसे भी सूखते मुरझाते पाया उस पर ज्यादा ध्यान दिया। पर एक यद्यपि जिन्दा रही पर पनपी नही। दूसरी फली फूली। तू जानती है, मैं प्रसिद्ध अभिनेत्री और गायिका थी। पर रेखा, यह सफलता तेरे दादा जी के हृदय के रक्त से सनी है, उनके अरमानो की चिता की गरमी पाकर पोषित हुई है।' कुछ देर ठहर कर वे बोली 'मैं घर आती। वह न जाने कितने उत्साह मे, किस उमग मे, किस कल्पना मे बैठे इन्तजार करते होते। मेरा शरीर वही होता रुपए का ख्याल होता और न जाने क्या क्या चिन्ताएँ होती। मेरे युग मे भी सरस्वती को लजाने वाली चार वनिताएँ होने लगी थी, उनसे न हारने को मुझे एक रत होकर माँ शारदा की पूजा करनी पडती थी। घटो सगीत का अभ्यास करना पडता था। मैं उनको समुचित समय और ध्यान नही दे पाती थी। दोनो को पाकर भी मैं एक का ही अपना सकी थी।'

वे कहती गईं हम साथ जाते। परिचय दिया जाता। तेरे दादा जी का व्यक्तित्व मैं निगल गई थी। वह वैसे ही नगण्य हो गए थे, जैसे मेरी सितार। मेरे सितार पर भी मखमली खोली होती थी और उसे भी यत्न से रखा जाता था। वह कीमती भी होती थी, पर वह एकमात्र साज। मेरी एक

सुविधा मात्र ही तो थी। अवलम्बन नही, मात्र साधन। मेरे सिरताज, तेरे दादा जी यहा रह गए थे। अनिद्रा दिया से दुखकर मैं उनके चौडे सीने पर विश्राम, शान्ति और बल पाती। पर मेरी सितार भी तो मुझे बल आशा व शान्ति देती थी न? और सितार से मुझे अधिक बल मिलता था धीरज होता था, दोनो बिल्कुल मेरे ही थे। मैं बिल्कुल दोनो में से किसी की सम्पूर्ण न होऊ, यह बात न थी। हा अपेक्षाकृत वे अवश्य उपेक्षित हो गए थे।'

एक आह खीचते हुए दादी जी ने आगे कहा हमारे तीन सन्तान हुई। पर वे मा न पा सकी। बढिया से बढिया वैभवपूर्ण जीवन तथा महगी शिक्षा उन बच्चो को दिलाई गई। पर एक भिखारिन भी जो अपने बच्चो को देती है, वह मैं विश्वनाथ के मंदिर की प्रधान गायिका उन्हे न दे सकी। लक्ष्मी सरस्वती के सयोग का यह अभिशाप है बेटी। इससे जो पीडा होती है, वह भोगने वाला ही जानता है। याद रख एकै साधै सब सधै-सब साधै सब जाय।

दादी जी कह रही थी बेटी प्रेम देकर पनपता है, लेकर नही। तेरे दादा जी ने दिया ही दिया लिया नही—और मुझे पनपाया। मैं आज रोती हू। काश मैं आज चुन सकती।

'मैं समझ गई हू। नरेन्द्र के बारे में ही कहोगी न? आज जो उसने कहा होगा वही तेरे दादा जी ने भी कहा था। तू भूल न करना। मेरी बच्ची! मेरा क्या है? कुछ वर्षों की ही अब मेहमान हू। तुम्हे अपना-सी अभिनेत्री बनाने का मेरा अरमान भी पूरा हुआ तो मुझे जीना ही कितना है? तेरे आगे जीवन है बेटी।' कहते कहते बुढिया दादी फफक कर रो पडी।

कुछ देर बाद मुझसे सारी बातें सुनकर दादी जी ने कहा नरेन्द्र ठीक कहता है बेटी। सारी उसकी हो सके तो हो जा, वरना ना कर दे। 'पर मेरा सगीत दादी जी!' मैं बिलख पडी। पगली जीवन में भी सगीत है न! स्टेज पर तो सगीत कभी ही मुक्त हो पाता है। प्राय साधना अधूरी ही रह जाती है। सासारिक वाहवाही तो मिल जाएगी। सगीत मुक्त होगा, साधना सफल होगी पर चिरशान्ति मिलेगी इसकी गारण्टी नही है। मुझ ही देख ले न! प्रेम में निश्चय ही वह मुक्त होता है, बशर्ते कि जीवन में जीता प्रेम करना आए और कुछ न करे बस जिये। मेरा आशीर्वाद है बेटा कि तुम जो भी मार्ग चुनो, वह दूसरे के अभाव को भी पूर्ण कर दे।

दादी जी ने मेरा मुँह अपने दोनो हाथों में ले रखा था। उन्होने मेरी आँखों में अपनी स्फटिक जैसी स्वच्छ आँखें डालकर उपर्युक्त बातें एक एक

शब्द धीरे धीरे कहकर अपना वक्तव्य समाप्त किया। फिर मेरा मुह छोड़ अपनी व्यथा छिपाते वो वह एकाएक बोली 'अब भाग जा मुझे सोने दे। उस रात वे सोई होंगी—इसमें मुझे सन्देह है। मैंने उन्हें उनकी जवानी के स्नि में पुनः धकेल दिया था और वे रात भर वहीं जीवन कल्पना में देखती रही होंगी।

मेरे व्याह के एक सप्ताह बाद ही दादी जी ने यह ससार छोड़ दिया। उनका दिल टूट गया था। वे मुझे विख्यात गायिका देखना चाहती थीं। वर्षों के अपने इस अरमान का उस पवित्र और भावुक हृदय ने मुझे सच्ची राय देकर खुद ही नष्ट कर डाला था। पर अन्त तक उनका यही भाव था कि उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं है। व्याह के बाद विदा के समय उन्होंने रात रोते मुझे दो ही चीजें दी थी। एक अपनी सितार जिसे वे किसी को छूने तक न देती थी और एक दादा जी के चित्र का लाकेट। तब उन्होंने रोते रोते कहा था बेटी मेरे सब अरमान पूरे करने में जिसने अपने को खपा दिया, उसी के चित्र को, अपने सर्व तम अरमान को तुम्हे सौंपती हूं। वह तुझ भी पूरा करेंगे। जा बेटी तेरा सगीत मूर्त हो।'

दो साल बाद हमारे एक लड़का हुआ। उनकी डाक्टरी अच्छी खासी चल रही थी। दादी जी के घर का सा वैभव तो हमें प्राप्त न था पर हम अच्छे ही दिन बिता रहे थे। शहर में हैजा फैला था। उनको साँस लेने की भी फुरसत न थी। उधर मेरे बच्चा होना था। जीवन के वे दिन भारी हो रहे थे। मन नहीं लगता था। उनका अधिकांश समय बाहर बीतता था। सवेरे लड़का हुआ तब भी वे घर न थे। एक दिन एकाएक बोले "आज मौसी की बरसी का दिन है रेखा! कुछ गाकर सुनाओ न!" मैंने महीनों बाद सितार सम्भाली। न मालूम कब तक गाती रही। मेरे पास ही कालीन पर लेटा बच्चा हाथ पर मार रहा था और रह रह कर दादा जी की तस्वीरवाला लाकेट जो उसे पहना रखा था, चूसने लगता था। वह उसके पास ही बैठे थे। वह कभी मुझे देखते कभी मुन्ने को। और मैं देख रही थी दूर, बहुत दूर स्वर्ग में दादी जी को। उनकी दी सितार ने समां बाध दिया था। जीवन सगीत मूर्त हो उठा था। एकाएक मुझे लगा कि दादी जी ने उनके अरमान तोड़ने के अपराध को क्षमा कर दिया है। वह खड़ी है और उनकी आँखों में आंसू तथा होठों पर मुस्कुराहट है।

नर या नारी

3 दिसम्बर, 2000 ई० को लन्दन में सर्जनों की अन्तर्राष्ट्रीय समिति की कार्यकारिणी की बैठक हुई। देशदेशान्तरों के यशस्वी सर्जनों की इस महासभा के चुने हुए प्रायः बारह अनुभवी सर्जन वयोवृद्ध डाक्टर हेलिंग की अध्यक्षता में यह तय करने बैठे कि अबकी बार किसे शल्य चिकित्सा के नये प्रयोग और अनुसन्धान के लिए वृत्ति दी जाय। अध्यक्ष सर्जन हेलिंग ने कहा-'साथियो, अबकी बार वृत्ति के लिए आये आवेदनों में सबसे विचित्र, पर वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक रूप से सम्भव आपरेशन से लिंग परिवर्तन तथा तत्सम्बन्धी खोज और अध्ययन के लिए दो वर्ष की वृत्ति देने की भारतीय सर्जन बोस की प्रार्थना है। सर्जन बोस ने इस बार में जो गवेषणात्मक रिपोर्ट लिखकर पेश की है उसे आपने ध्यानपूर्वक पढ़ा ही होगा। मैं उनकी सभी मान्यताओं और निष्कर्षों से सहमत हूं। यदि आप लोग स्वीकार करें तो सर्जन बोस को मानवता के इतिहास में क्रान्ति ला देने वाला यह प्रयास कर देखने के लिए वृत्ति दे दी जाय।'

रूसी सर्जन लिओ मार्टिन ने कहा—'हम पुरुष और स्त्री में भेद ही नहीं मानते हैं। मेरा देश इस पुरुष की प्रबलता के दम्भ से छुटकारा पा चुका है। यदि सर्जन बोस सफल भी हुए तो संसार का कोई लाभ तो होगा नहीं। इसका कोई व्यावहारिक मूल्य प्रतीत नहीं होता। मेरा सुझाव है कि चूहे की अन्तड़ी का अंश यदि मानव की अंतड़ी में सी दिया जाय तो इसका कैंसर पर क्या असर होता है यह देखने के लिए वृत्ति दी जाय।'

खासा हंगामा मचा। अध्यक्ष डाक्टर हेलिंग जर्मन यहूदी थे। संयोग की बात है कि 1930 में उन्हीं के देश के डाक्टर गेन्हाट तथा एनस न बर्लिन में एक डनिश चित्रकार का आपरेशन करके उसे नारी बनाने में सफलता प्राप्त

की थी। ड्रेस्डन के सर्जन प्रोफेसर ब्रेंटन ने उसी स्त्री को गर्भ धारण योग्य बनाने के लिए पुन उसका आपरेशन किया था। मानव और प्रकृति के अहर्निश द्वंद्व मे मानव ने फिर मुंह की खाई थी और वह स्त्री मर गई थी। वह प्रयोग तब मे ज्यों का त्यों पड़ा था। अब 90 साल बाद जर्मनी के उस प्रयोग को पुन विश्व के सामने लाने को जर्मन अध्यक्ष व्यग्र हैं, यह आक्षेप भी उन पर किया गया।

बहुत बहस के बाद सभापति ने प्रार्थी बास से बोलने को कहा। सर्जन बौम ने कहा—मेरे देश की सरकार ने तय किया है कि यदि यह समिति मेरे सिद्धांत को सम्भव मानकर मुझे वृत्ति दे देती है तो वह भी मुझे उतनी ही वृत्ति देगी। मेरे देश को स्वतन्त्र हुए पचास वर्ष से अधिक हो गये है, पर वहां अब भी पुत्र से पुत्री का दर्जा नीचा माना जाता है। उत्तराधिकार से भी पुत्री वंचित है और करोड़ो की सम्पत्ति के मालिक की कन्या उसके मरने के बाद भूखो मरती है और उसके दूर के रिश्तेदार करोड़पति हो जाते हैं। मेरे देश म लाखो धनिक बड़ी उत्कण्ठा से मेरे प्रयोग की सफलता की ओर आँखें लगाए बैठे हैं। स्त्री से पुरुष बनने के लिए किन किन ग्रंथियो का आपरेशन करना होगा, कौन कौन से अवयव निकाल फेंकने होंगे आदि सब सविस्तार मैं अपने लेख म लिख चुका हू। यदि उस विषय म आप लोग कुछ प्रश्न करना चाहे, तो मैं और मेरी साथी डाक्टर ऊषा जो एफ आर सी एस हैं हाजिर हैं। कई पुरुषो म नारी की कमनीयता, भावुकता लगन और हठ आदि के उदाहरण आपने अपने जीवन मे देखे होंगे। कई नारियो की प्रकृति और आदतो की बनावट से उन्हें पुरुष कहें, तो ज्यादा ठीक प्रतीत होता है। प्रत्येक मानव के शरीर म 'नर और मादा' के शरीर के प्राय सभी अवयव मौजूद होते हैं। जो अवयव जोर पकड़ जाते हैं वही उस प्राणी का लिंग हो जाता है। पर सूक्ष्म रूप मे ही सही, नर म मादा के और मादा मे नर के अवयव रहते हैं। परिस्थितियो से वे सूक्ष्म अवयव जोर पकड़ते हैं और बड़े अवयवो का ह्रास भी होता है। मानसिक स्थिति म तो यह परिवर्तन और भी स्पष्ट दिखाई देता है। पुरुषो को औरतो की तरह बिलख-बिलख कर रोते किसने नहीं देखा है? सौभाग्य से मेरी मंगेतर ऊषा मुझे सहयोग दे रही है। वह स्वयं एक डाक्टर है और अपने धनी पिता की इकलौती सन्तान। मानसिक दृष्टि से वह पुरुष अधिक है। वह एक सफल सर्जन है और मेरी मान्यता है कि वह आज भी मानसिक रूप से केवल दस प्रतिशत ही नारी है। उसके शरीर के अध्ययन की पूरी रिपोर्ट मेरे लेख के परिशिष्ट क मे दी हुई है। उससे मैंने यही निष्कर्ष निकाला है कि उसके मस्तिष्क के विकास को देखते हुए वह आसानी से पुरुष बनाई जा सकती है।

'विश्व के प्रयागो के वैज्ञानिक प्रतिनिधियो से, जो इस सभा म आए हैं मेरा अनुरोध है कि व ऊषा के मानसिक दृष्टि से 10 प्रतिशत ही नारी होने की बात कृपा कर न छापें। इससे लोग यह समझेंगे कि कुछ ही नारियां और नरो का लिंग परिवर्तन हो सकता है। इससे अधिक रोचक तो यही है कि वह मेरी मगेतर है और विज्ञान की बलिवेदी पर उसने प्रयोग के लिए अपने जीवन की भेंट दी है। हम दोनो ने आजीवन कुंआरे रहने और केवल एक दूसरे के लिए ही जीने की शपथ ली है। मैं यदि सफल हुआ तो उसके पिता पुत्र पाकर फूले न समाएंगे। मरे पूवजो की तृप्ति पुत्र ही कर सकता है ऐसी मेरे देश की मान्यता है। जैसा कि आप जानते ही है अस्सी साल पहले के डेनिश चित्रकार के लिलि बनाए जाने का पूरा विवरणात्मक हाल उपलब्ध नहीं है सो ऊषा का यह उत्सग सारे वैज्ञानिक इतिहास म बेजोड कहा जा सकता है। मेरा प्रयोग यदि विफल भी हो जाता है तो यही तो होगा कि नारी के अवयव निकाल फेंकने के बाद पुरुष अवयव जोर न पकडे। ऐसी स्थिति मे भी वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि तो होगी ही। तीसरे लिंग की सम्भावना का सिद्धान्त बहुत ही वैज्ञानिक और पुराना है। मेरे देश म भगवान शिव का अर्द्ध नारीश्वर रूप प्रसिद्ध है उसी तीसरे लिंग के अध्ययन का सुअवसर मिल जायेगा और समिति की वृत्ति बेकार न जायगी। हा मैं और ऊषा कही के न रहेंगे। वह न तो नर ही बन सकेगी, न नारी ही रहेगी। यह सब जानते हुए भी वह हठ करके अपने पिता को मना चुकी है। इसी से मैं कहता हू कि उसका वैज्ञानिक अध्ययन का प्रेम गहन है। वैज्ञानिको ने दवाओ के परीक्षण म हस हसकर सहष मृत्यु का आलिंगन किया है। पर ऊषा मृत्यु से भी अधिक दुरन्त खतरा सहष ले रही है। जीवन भर के कष्ट का खतरा मृत्यु से भी अधिक भयावह है। पर हम दोनो की मान्यता है कि हम सफल होंगे और वह पूर्ण पुरुष बन जायगी। वह और त्याग नही करना चाहती। सम्भव है बाद मे राजी हो जाय। अभी उसका नारी हृदय यह स्वीकार नही करता कि वह पुरुष बनकर भी किसी अन्य से प्रेम करे—किसी से ब्याह कर ले। इसी से हम दोनो ने शपथ ली है कि आजीवन हम एक दूसरे के लिए ही जिएंगे और ब्याह नही करेंगे।

सवाददाताओ का ध्यान मैं इस सभा मे पेश की गई अपनी रिपोट म सविस्तार दी गई कुछ दिलचस्प बातो की ओर भी आकृष्ट करना चाहता हू। मेरी उनसे प्राथना है कि वे विश्व को बतायें कि पुरुष पुगव नैपोलियन सन्ट हैलेना के निर्वासन म बहुत ही क्षीण और जनाना हो गया था। उसकी मृत्यु के बाद उसके शव की चीरफाड करके डाक्टर हेनरी ने जो रिपोट प्रकाशित की थी, उसम स्पष्ट है कि वह शव प्राय एक नारी का शव था। मेरी रिपोट

से छपाकर उन पुरुषों का विवरण ले लें जो अपने बच्चों को अपने स्तन पिला पिला कर पालते थे तथा उन देवियों को भी न भूलें, जिनकी दाढ़ी और मूंछे ही नहीं, पुरुष सुलभ अन्य अंग भी उग आए थे।

फौज का एक सजा मरने पर नारी पाया गया था। मेरी खोज से भविष्य में केवल स्त्री और केवल पुरुष ही पैदा करना सम्भव हो जायगा और तब मानवता का रूप ही कुछ और होगा। यह कहना कि इस अध्ययन का व्यावहारिक मूल्य नहीं है ठीक नहीं। विश्व की सारी समस्याओं का कारण यही तो है कि प्रत्येक बात में नर और नारी का हाथ होता है। सत्य तो सापेक्ष नहीं है न? पूर्ण नर और पूर्ण नारी की जगत को जरूरत है। अपने उसी अभाव की पूर्ति को उसने देवी देवता बनाए हैं पर उस कल्पना में भी वह पूर्णतया नर और नारी के दर्शन नहीं कर पाया है। लिंग परिवर्तन की कल्पना नाटककारों का शौक नहीं वैज्ञानिकतः सम्भव है।'

इस भाषण का अच्छा असर हुआ। फ्रांस के सज्जन मार्तिमर ने ऊषा तथा बोस के आजीवन अविवाहित रहने के प्रण को अवैज्ञानिक बताया और केवल पुरुष या स्त्री की सृष्टि से संसार अधिक सुखी हो सकेगा, इसमें संदेह प्रकट किया। बहुमत ने सज्जन बोस को वृत्ति देने का निर्णय हुआ और जलपान तथा ऊषा से परिचय के बाद सभा विसर्जित हुई।

[2]

म्यूनिख में सज्जन बोस ने एक वर्ष बाद ऊषा पर दूसरा आपरेशन किया है। ऊषा के स्तन सूख चुके हैं केश झड़ गए हैं तथा मूंछें-दाढ़ी आने लगी है। स्वर में भी नारी-कण्ठ नहीं रहा है। मानसिक दृष्टि से भी वह प्रशान्त रहने लगी है। प्रयोग सफल रहा है। स्पेशल वार्ड में नर्स रोज और सज्जन बोस बैठे उससे बातें कर रहे हैं। ऊषा बोली मेरे पिताजी को जो पत्र आपने लिखा, वह मुझे बिना दिखाए ही अबके क्या पोस्ट कर दिया?

मुबारक हो ऊषा। यह तो पुरुष बोल रहा है। नारी का दुराव, उसकी चतुरता, उसका रहस्य इस वाक्य में नहीं है। बात यह थी कि भारत की डाक जा रही थी। तुम सो रही थी। उनको मेरे प्रयास की सफलता पर अब विश्वास सा होता जा रहा है। पूर्ण सफलता पर मुझे एक लाख का पुरस्कार देने के निश्चय का पत्र पिछले से पिछले जहाज से आया था। उसका धन्यवाद इसी डाक से भेजना मुझे जरूरी लगा। दूसरे, इस आपरेशन के परिणाम की सूचना के लिए भी वे व्यग्र होंगे। यही सोचकर मैंने बिना तुम्हें दिखाए वह पत्र पोस्ट कर दिया। तुम्हें कुछ शक हो रहा है क्या?

'नही तो'—ऊपा वोली—'मैं अब अपने भाव छिपाकर नही रख पाती हूँ यह अनुभव कर रही हू । दूसरा आपरेशन करने का यह पत्र तुम मुझे दिखा देते तो अच्छा होता । मुझे लगता है कि तुम आजकल मुझसे कुछ छिपा रहे हो । कुछ खोए-खोए से लगते हो । क्या तुम्हे अपने प्रयोग की पूर्ण सफलता पर उतना विश्वास नही रहा ?

'पागल न बनो उषा । तुम्हारी यह कल्पना नारी मस्तिष्क के शेष बचे सेल की उपज मात्र है । ऐसी कल्पनाएँ अपने प्रयास को नुक्सान पहुँचा सकती हैं । तुम कहो तो मैं तार देकर वह पत्र तुम्हारे पिताजी से बिना खोले लौटा देने का अनुरोध करूँ और आने पर उसे तुम्हें सौंप दूँ ।'

'नही ऐसा करना व्यर्थ है । मैंने क्या प्रयास की सफलता के लिए अपना सर्वस्व दाव पर नही लगा रखा है ? कल्पना करो कि तुम नारी हो जाते तो नवीनता के अलावा तुम्हारे जीवन मे शेष क्या रह जाता । माना कि मेरा पुनजन्म हो जायगा, पर मेरी स्मृति तो वही रहेगी । मेरे जीवन भर के स्वप्न, मेरी सारी अभिलाषाएँ अपूर्ण रहेगी । नई पुरुषोचित कामनाओ को न उठने देने की मैं कसम खा चुकी हू । फिर क्या रहेगा मेरे जीवन म ?'

नारी की शारीरिक इच्छाओ से तुम छूट जाओगी ऊषा । यहा तो पुरुष की इच्छाएँ रहेगी पर मुझे जीवन्मृत होकर रहना होगा । पर छोडो भी इस पचडे को । मुझे प्रसन्नता है कि तुम मर्दो की तरह डीगें मारने लगी हो । नारी तो त्याग करती है, पर कहती नही ।

'पिताजी तुम्हे एक लाख रुपए देंगे । मुझे तो तुम्हारे भाग्य पर ईर्ष्या हो रही है !'

हिन्दू लॉ के अनुसार तुम्हे न मिलकर भाई या धर्वो को जो करोडो की जायदाद मिलती, वह अब तुम्हे ही मिलेगी ऊषा । वैज्ञानिक खोज के इतिहास म तुम्हारे साहस, उत्साह व उत्सर्ग की कहानी अमिट अक्षरो मे लिखी जायगी । सर्जन ऐसे आपरेशन करने लग जायेंगे, तब मेरा नाम दुनिया भूल जायगी, पर तुम्हारा नाम प्रथम स्त्री परिवर्तित पुरुष के रूप मे सदा लिया जायगा—' वोस ने कहा ।

ऊषा ने बात बदल दी । वह वोली—'मैं और नर्स चाहती हू । रोज का मेरे पास तरह मास हो गए हैं । मैं इससे ऊब गई हू ।'

'रोज बड़ी चतुर है, ऊषा।' बोस बोले—'तुम्हारे केस का इस तरह मास का शुरू से ही अनुभव भी है। अब उसे हटावें तो यह उसके प्रति अन्याय होगा। नई नर्स होगी तो मेरा काम बढ़ेगा।'

'यह नर्स बिल्कुल मशीन है। इसमें कहीं भी मेरे लिए भावना नहीं प्रतीत होती।' ऊषा ने सक्षोभ कहा।

'यह और भी अच्छा है। अभाव में भूख जागती है। पुरुष की ममता—भावुकता, स्नेह की प्यास तुममें इससे और बढ़ेगी। ऐसी सुन्दर नर्स और कहाँ पाओगी ऊषा?'

सुन्दर है यह पुडिंग'!—ऊषा खिलखिलाई। उत्तेजित न होओ। यह भी इस नाम देने वाले केस को आसानी से छोड़ देगी यह सम्भव नहीं दिखता। और फिर कोई कारण भी तो हो। विश्व की आँखें इस केस पर लगी हैं। बेचारी रोज के चित्र विश्व भर के अखबारों में 'नाहक हो हटाई गई नर्स' शीर्षक से छप जाएंगे। अब समय ही कितना है। और दो मास हो की तो बात है। परसों फिर ऑपरेशन है। यही अंतिम होगा। इसके बाद तुम साड़ी पहनना छोड़ देना। यह तो तुम्हें अब भी शोभा नहीं देती। कोट पैण्ट पहनना। अब सो जाओ। मैं और रोज सिनेमा देख आयें। तुम्हें आराम करना चाहिए।'

[3]

ऊषा के अंतिम ऑपरेशन में उसके अनुरोध से बूढ़े हैलिंग ने सर्जन बोस की सहायता की थी। ऑपरेशन पूर्णतः सफल हुआ। आज दो मास बाद ऊषा अस्पताल छोड़ेगी। पत्रकारों ने ऊषा, हैलिंग और बोस को घेर रखा है। बोस ने उन्हें यह कह दिया है कि अभी ऊषा को कुछ मानसिक उत्तेजना से बचना चाहिए। इसलिए वह उनसे बातचीत न करेगी। हाँ चित्र वे ले सकते हैं। ऊषा को बोस की यह बात पसन्द नहीं आई। ख्याति खुद लेने के लिए इसने शायद यह हरकत की है ऊषा ने सोचा।

तभी बोस ने पुकारा—रोज रोज कहाँ गई! और उसके आने पर बोले—सज्जनो यह हैं मिस रोज। इस केस में शुरू से यही रही हैं और इनकी दक्षता और मेहनत न मिलती तो मैं सफल होता इसमें सन्देह है। आप इनसे केस के बारे में विस्तृत जानकारी पा सकेंगे। आइए डाक्टर हैलिंग आओ ऊषा। इन्हें बात करने दें।

दूसरे कमरे में जाकर ऊषा ने हैलिंग को एक नोटबुक दी और कहा—'इसमें मेरी दैनिक डायरी है। समिति और वैज्ञानिक इसमें दैनिक मनोभावों

का सच्चा और विस्तृत चित्रण पावेंगे। मेरे अभागे जीवन के गुप्त भाग का भी इसमे चित्रण है। समिति को आपके द्वारा मैं यह भेंट करती हूं।

'अपने अनन्य साथी बोस को भी मैं कुछ भेंट देना चाहती हूं। यह कहकर उसने कोट की जेब मे हाथ डाला, 'यह लो पिता जी का चक'। कह-कर उसने उन्हे एक चैक दिया।

फिर जेब मे हाथ डालकर एक पिस्तौल निकाला और बोस को गोली मार दी और कहा—'रोज के प्रेमी नीच भ्रष्ट कृतघ्न! प्रतिरूप म यह मेरी ओर से स्वीकार कर!'

दूसरी गोली उसने अपने ललाट मे मार ली और वही ढेर हो गई।

बोस मरा पड़ा है। ऊषा मर गई है। बूढ़ा हेलिंग ऊषा की दी डायरी पढ़ता है और सोचता है कि ऊषा के बोस को कहे अंतिम शब्दों का स्वर आहत पुरुष मे प्रतिद्वन्द्वी की प्रतिहिंसाजन्य गर्जना थी या कुचली, चोट खाई हुई नागिन की फुंकार?



प्रथम प्रकाशन—नया समाज (मासिक, कलकत्ता) अगस्त, 1950

चोट

प्रात काल की ठण्डी हवा से मेरी नींद खुली। अपने हाथों से आँखें मलने का उपक्रम करते ही मुझे हाथों के बजाय शेर के पंजे दिखाई दिए। शरीर बहुत ही भारी प्रतीत हो रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे एक विशाल समुद्र में एक छोटी सी नाव है या एक बहुत बड़े किले में एक छोटी सी चींटी। मैंने आँख बन्द कर ली और इस खबर का अपने जीवन से सम्बन्धित करने के प्रयास में लग गया। थोड़ी देर में स्मृति पटल पर कल शाम तक के चित्र स्पष्ट हो गए। मैं डाक्टर रमेश के साथ सिनेमा गया था और लौटते समय देखा था लीला को जो अपने पति के साथ आई थी। विलायत से अभी हाल में ही बैरिस्टरी पास करके लौटे इस युवक ने मुझसे धनवान होने के कारण लीला को—मेरी प्राणाधिक लीला को—ब्याह लिया था। इस चोट से तिलमिलाकर मैं शहर छोड़ने का निश्चय कर चुका था और आज मुझे जाना था। रमेश हठ करके मुझे सिनेमा ले गया था, पर वहां भी मैं रह रह कर अपने में ही केन्द्रित हो जाता था और फिल्म का कथानक मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैं सिनेमा जाता ही नहीं, पर मित्र रमेश का अन्तिम अनुरोध जान चला गया था के लि और इन मित्रों को छोड़ रहा था।

जैसे तैसे सिनेमा खत्म न की पति का हाथ पकड़े लीला क ई दी। मेरे मा वह ी वह साक्षात् ोर ी अन्तर्निहित प ोर उन दोनों का

इसके बाद का घटनाक्रम स्पष्ट नही था। दिमाग पर बहुत जोर देकर भी मैं कुछ याद नही कर पा रहा था। मैने नेत्र खोल दिए और इस चित्र की पूर्ति के लिए चारो ओर देखना शुरू कर दिया। मैं एक लकडी के तख्त पर एक अपरिचित कमरे मे लेटा था और मेरे चारो ओर लोहे के सींखचे थे। ऊपर एक हरा बल्ब जल रहा था और जंगले के बाहर एक कुर्सी पडी थी। क्या यह जेल है, या मैं पागल हो गया हूं? ये दोनो ही विचार सिहरन पैदा करने वाले थे। शायद मेरे नेत्रो मे कोई रोग हो गया है, यह सोच मैने नेत्र मले और उन्हे आराम देने के लिए फिर बंद कर लिया। जीवन के वास्तविक कटु सत्य का सामना हम सब जैसे कबूतर बाज को देखकर नेत्र मूंद लेता है, वैसे ही उसके अस्तित्व से इन्कार करके उस तरफ से आखें मूंद कर ही तो करते हैं।

मैं न मालूम कितनी देर आखे मूंदे पडा रहा और न जाने क्या क्या सोचता रहा। किसी के पैरो की आहट सुन मैंने नेत्र खोले, तो देखा कि मेरे सींखचो के बाहर की कुर्सी को रमेश खीचकर उस पर बैठने का उपक्रम कर रहा है। मुझे जगा देख रमेश ने मुस्कुराते हुए अपनी उंगली अपने मुंह पर रख मुझे चुप रहने का इशारा किया और बोला— नमस्कार राजेश! मुझे तुमसे बहुत कुछ कहना है और वह इसलिए और भी कठिन है कि तुम इस वार्तालाप मे भाग न ले सकोगे। कल सिनेमा से लौटते समय तुम न जाने क्यो विक्षिप्त की तरह सडक की ओर लपके। तभी पोर्टिको मे से आती एक कार ने तुम्हे दबा दिया और तुम्हारी कई हड्डियां टूट गई। रीढ का तो मानो आटा ही हो गया। तत्क्षण तुम्हे अपनी कार मे डाल मै सर्जरी कक्ष मे ले आया। परीक्षा करने पर पता लगा कि तुम जीवित हो पर शरीर बेकार हो गया है। मेरे सहकारी डाक्टर घाणेकर का भी यही मत था कि यदि तुम जीवित भी रहे तो वैसे शरीर मे जीने से तो मृत्यु भली होगी। एक वैज्ञानिक आसानी से हार नही मानता, निरुत्साह नही होता और मुझे अब तक के अपने मस्तिष्क की सर्जरी के प्रयोगो का स्मरण हो आया। तुम्हारी स्वीकृति या राय लेने का समय और प्रश्न हो न था और मुझे व घाणेकर को तत्क्षण फैसला करना था। विश्वास करो कि किसी पिता को भी पुत्र के लिए इतना महत्वपूर्ण फैसला नही करना पडता होगा। डाक्टरी के जीवन मे मुझे कई बार तत्क्षण निश्चयात्मक निर्णय करने पडते हैं पर कभी किसी मनुष्य या डाक्टर ने इतनी जल्दी इतना जरूरी फैसला नही किया होगा।

डाक्टर का कर्त्तव्य यथाशक्य प्राण रक्षा है, और यह निर्विवाद था कि तुम्हारी प्राण रक्षा की जा सकती थी। बाजार मे मानव शरीर और वह

भी सद्यमृत गरमागरम कि उसकी हृदय पेशियाँ मस्तिष्क की प्रेरणा पर पुन सिकुड़ने लग जायें और अंग-प्रत्यंग में प्राणदायक रक्त प्रवाहित कर सकें—नहीं मिलता है। अपने मस्तिष्क की सर्जरी के प्रयोगों के लिए मेरे पास एक जीवित बलवान सिंह था। मैंने उसे क्लोरोफार्म देकर उसका मस्तिष्क निकाल दिया। फिर तुम्हारा मस्तिष्क निकाल कर उस सिंह की खोपड़ी में डाल दिया। *आँख, कान, नाक आदि के सम्बन्धित ज्ञान और प्रेरणा तन्तुओं को* सिंह शरीर के तत्सम्बन्धी तन्तुओं से जोड़कर खोपड़ी सी दी। तुम शरीर रचना से परिचित नहीं हो, इसलिए तुम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि यह आपरेशन कितना जटिल और लम्बा था। जरा सी भूल से तुम अन्धे, *लगड़े-लूले, बहरे, गूंगे—कुछ भी रह जा सकते थे। स्पर्श तन्तुओं में भूल कर* जाता तो तुम स्पर्श अनुभव से वंचित रह जाते। पर हमें सफलता मिली। तुम जीवित हो और रहोगे। शरीर तुम्हारा नष्ट हो गया है। तुम अब सिंह शरीर में हो। बोलोगे, तो सिंह की गर्जना निकलेगी, क्योंकि गला सिंह का है। खाओगे तो वही खाना होगा, *जो सिंह खाता है, अन्यथा सिंह का मेदा* पचा नहीं सकेगा। मस्तिष्क और शरीर की आवश्यकताओं के इस द्वन्द का अध्ययन विज्ञान के लिए वरदान होगा। काया प्रवेश की डींग भारत के साधु और योगी मारते आए हैं। आज भारत के ही दो सज्जनों ने इसे सत्य कर दिखाया है। तुम पर अन्याय तो हुआ है, पर भाई सोचो कि जब मैं तुम्हारे प्राण बचा सकता था तो एक मित्र और सज्जन होते हुए कैसे तुम्हें अपने सामने मर जाने देता ? तुम कहोगे इससे तो मौत भली है। पर जीवन एक सत्य है' और तुम कल शाम को भी कह रहे थे कि लीला दूसरे की पत्नी बनी, इससे तो मौत भली है। *न मालूम मौत किस किस से भली है,* पर मैं तुम्हें शेर के बजाय कुत्ता, बंदर बैल आदि भी तो बना सकता था। क्या उन सबसे सिंह शरीर अच्छा नहीं है ?

'*मृत आत्माओं से जैसे प्लेंचेट से वर्णमाला के एक एक* अक्षर पर इशारा कर के संदेश लेते हैं, वैसे ही तुमसे भी लिए जा सकेंगे। डरो मत, तुम्हें जो भी कहना होगा वह तुम थोड़े अभ्यास के बाद कह सकोगे। डेमी ■ जैसे गट गट गट-गट करके तार मोर्स कोड से भेजते हैं वैसे ही तुम भी जो कहना चाहोगे, कह सकोगे। तुम्हारे बलिष्ठ पंजे डेमी तो क्या, कोई भी चीज दबा सकते हैं। साहित्यिक कहते हैं कि प्रेम, स्नेह आदि हृदय के भाव हैं। विज्ञान उन्हें मस्तिष्क की स्फुरणा अथवा मानसिक उद्वेग मात्र मानता है। तुम साहित्यिकों को विज्ञान का मुंह तोड़ जवाब हो।

'यह तुम्हारा घर है। जब तक चाहो, रह सकते हो। सत्य तो यह

है कि तुम्हारा अध्ययन विज्ञान के लिए वरदान है और वह मुझे यश और धन दिलाएगा। पर तुम मुझ पर नाराज हो तो पंजे से गट-गट-गट-गट करना सीख लो और कोई भी सरकस तुम्हें प्राप्त करके सौभाग्यवान बनना चाहेगा। शेर के शरीर में मानव-मस्तिष्क संसार का अष्टम आश्चर्य है, और मानव चकित होने के लिए बहुत कुछ खर्चने को तैयार है। तुम गणित के सवाल तो क्या उन सब सवालों के उत्तर टेलीग्राफ कर सकोगे जो मानव दे सकता है। अपने से कम चतुर मानव को उत्तर देने में तुम परास्त भी कर सकते हो। तुम्हारा मस्तिष्क सम्पूर्ण और पहले जैसा ही है। मुझे क्षमा कर दो भाई! जरा यह सोचो कि मैं और करता क्या? ये पचास गोलियां खा लो, नींद आ जायगी। मानव को हम दो गोली देते हैं। खोपड़ी में अधिक उत्तेजना नुक्सान कर सकती है, यह याद रखो।

हां कल दुर्घटना के पहले तुम न जाने क्यों उत्तेजित थे। उस उत्तेजना से तुम्हारे मस्तिष्क में बहुत सा खून पहुंचा हुआ था सो इतनी चोट के बाद भी वह मस्तिष्क नवीन शरीर में गठबन्धन की लम्बी क्रिया पूरी होने तक गरम व सक्रिय रहा अन्यथा यह ऑपरेशन सफल होता, इसमें सन्देह है। अब सो जाओ। तीन चार घण्टे बाद मैं फिर आऊँगा और तुम्हें भोजन करा दूँगा। तुम्हारे तकिये के नीचे फर्श पर घण्टी का बटन है। इसे पंजे से दबाकर मुझे बुला सकते हो। नमस्कार।'

[2]

डाक्टर रमेश का बैरा कई कारणों से उन्हें सनकी समझता था। दस बरस की नौकरी में सदा संक्षिप्त हुक्म ही मिलते रहे हैं। इनाम-इकराम, कम काम, अच्छी तनख्वाह आदि प्रलोभन न होते तो वह कभी का भाग गया होता। डाक्टर साहब ऑपरेशन में चले जायें, बस फिर मौज-ही-मौज है। बैठे बीड़ी पीते रहो। लोग आवें बिठा दो, यही ड्यूटी तो शेष रह जाती थी। हाँ आने वाले यदि मोटर से उतरें तो जरूर बैरा बीड़ी को अपने स्टूल पर रख बड़े तपाक से जाली लगे दरवाजे को खोलकर एक ओर खड़ा हो जाता था कि वे भीतर प्रवेश कर सकें और जाती बार इस सम्मान प्रदर्शन के बदले बख्शीश दे जायें। साइकिलों पर या पैदल आने वालों पर तो बैरा जगदीश साहब की भक्ति नास्तिक की भक्ति के सदृश थी। वे खुद दरवाजा खोल भीतर आते थे और वह बैठा बीड़ी पीता रहता था। हर एक आगन्तुक यह जरूर पूछता था कि डाक्टर साहब कितनी देर में आवेंगे और उत्तर का स्वर व ढंग प्रश्नकर्त्ता की जीवन में प्राप्त सफलता के अनुपात में देना जगदीश की विशेषता थी।

आगतो के प्रतीक्षा के कमरे के अन्दर एक और कमरा था, जिसमें मिलने वाले बारी बारी से डाक्टर साहब से मिलते थ। वह अन्दर का कमरा डाक्टरो का दफ्तर था। प्रतीक्षको मे से किस पहले मिलने भेजना है, यह भी डाक्टर का स्पष्ट निर्देश काड देखकर न हो तो जगदीश ही तय करता था। सब काड देख डाक्टर मुलाकात का जो क्रम निश्चित करते थे उसमे उलट फर भी वह कर दिया करता था। हा दो एक व्यक्तियो के मिलन में क्रम को वह नही बदलता था क्योंकि इसम डाक्टर साहब को याद हो तो स्थिर क्रम मे उलट फेर के पकडे जाने का भय था। पकड जाने पर इनाम का ताना देत हुए डाक्टर डाट देत थे और उनकी की डाट मधुर नही हुआ करती। जगदीश आगन्तुको की जल्दी का उनके काय का तथा उनके खच करने की क्षमता का उनकी शक्ल से ही ठीक अन्दाज लगा लेता था।

उस दिन डाक्टर साहब सवेरे ही आपरेशन के कमरे म गए और जगदीश ने स्टूल के सामने दूसरा स्टूल रखकर अपने लिए आरामकुर्सी बनाई ही थी कि सिंह आया और बेतकल्लुफी से अपने अगले पजे से वेटिंग रूम का दरवाजा खोल हाथी की तरह मन्थर व स्थिर गति से उसम प्रवेश किया। जगदीश ने जाली म से देखा कि सिंह वेटिंग-रूम को पार करके डाक्टर के कमरे का दरवाजा खोल उसमे प्रवेश कर रहा है। डाक्टर ने कहा भी था कि आज एक शेर मिलने आवेगा, बठाना। जगदीश ने उसे मजाक या सनक समझा था और 'अच्छा, सरकार' ! कह दिया था। क्या करना चाहिए, यह जगदीश तय न कर सका। डाक्टरो को सूचना देने का नियम नही था। आपरेशन थियेटर म डाक्टरों को किसी अवस्था म भी कोई सूचना नही भेजी जाती थी। डाक्टर लोग ही आज आपरेशन म थे। कोई बडा आपरेशन था। कम्पाउण्डर और नर्सें इधर-उधर दौड रह थे। सारा वातावरण सचेष्ट, जीवित व जागरूक था। ऐसे समय म नियमो को भुलाकर डाक्टर को इत्तला देना खतरे का काम था और व्यस्तता म उनको को छेडने का साहस जगदीश म था नहीं।

तभी डॉक्टर घोनेकर दफ्तर की तरफ आए। जगदीश दरवाजे पर खडा होकर बोला—'अन्दर शेर है साहब।' उसके इस आतक भरे विनीत स्वर के उत्तर म उन्होने कहा—मालूम है।' माना वह कोई विशेष समाचार ही न था।

दो चार मिनट अन्दर रहकर डाक्टर घोनेकर लौट आए और बोल—'दफ्तर का पर्दा चलन दो और कोई आवे तो कह दो कि आज मुलाकात नहीं होगी, हम सब बड काम म लग हैं। एक बाल्टी भर कर भारी रख

आओ शेर प्यासा है। घड़े में ठण्डा पानी लेना।' और जगदीश की भय भरी आकृति देख डाक्टर साहब मुस्कुराए और बोले—जल्दी बाल्टी भर लाओ। मैं रख आऊँगा।' जगदीश लपककर बाल्टी भर लाया अन्दर जाकर पंखा बन्द कर देना या पानी की बाल्टी रख आना उसके बस का काम नहीं था। डाक्टर बाल्टी रख आए और पुनः आपरेशन की ओर चल गए। उस दिन जगदीश एक ही स्टूल पर बैठा रहा और उसने बीड़िया पी-पीकर पास बड़े गमले में नहीं फेंकी। उसने भी घर पर एक कुत्ता पाल रखा था। पर डाक्टर के इस दुस्साहस पर उसने क्या सोचा इसकी कल्पना ही की जा सकती है। उसे यह मालूम न था कि यह वही सरकस का शेर है, जिसे वह देख आया था और जिससे वह अपने दोस्तों का मुँह बन्द किया करता था।

प्रातः 9 बजे दोनों डाक्टर दफ्तर में आए। जगदीश ने राह में ही 'मेरा लड़का बीमार है, सरकार!' कहकर छुट्टी ले ली। वह डर रहा था कि भीतर जाकर ये घण्टी बजाएंगे और मुझे भीतर जाना होगा। उस कमरे में प्रवेश से बचने के लिए छुट्टी लेने में ही खैर है यह नतीजा उसने प्रातः 8 बजे से 9 बजे तक सोचकर निकाला था।

कमरे में सिंह शरीर धारी मिस्टर राजेश कालीनपर एक [illegible] के समान बैठे हैं। इन दिनों वे एक सरकस के सबसे बड़े आकर्षण हैं। पंजे से थप-थप करके वे गुणा, भाग जोड़ और बाकी के प्रश्नों का [illegible] दर्शकों को चकित किया करते हैं। तार दर की डेमी पर [illegible] पूर-पूर सन्देश देते हैं। और शहर भर में शोर भरे लोगों के [illegible] प्राप्त कर चुके हैं। जैसे बच्चा सीखता है, वैसे ही [illegible] में [illegible] और सन्देश देना सीखा है और इस अध्ययन काल में [illegible] का अनुराग किया था। मानव शरीर में भी वे [illegible] पात्र [illegible] समझते थे। सिंह होकर भी उनकी [illegible] है। सिंह होकर भी [illegible] की कहानी प्रचलित कराई थी। [illegible] इच्छा वह मानसिक दुर्बलता है जिससे [illegible]।

इस [illegible] कालीन [illegible] तथा दो नौकरों का [illegible]। वह [illegible] पाता है, [illegible] हुआ है।

[illegible] सिंह [illegible] धर्मेन्द्र [illegible] है वही [illegible] की [illegible]

निराशा आदि जो मानव जीवन म होत है। सफलता के बाद पुन सफलता की खोज मे चल निकलना ही तो जीना है।

मिस्टर राजेश न असीम सयम से काम लिया है। उनके जरा से क्रोध या प्रसन्नता मे शाबाशी देने का अर्थ उनके सेवक की निश्चित मृत्यु थी। मानव शेर बन जाय, यह यदि आश्चय है, तो वह उस स्थिति मे भी सयम रखे यह कम आश्चय नही है। प्राय थोडा अधिकार पाकर भी मनुष्य मनुष्यता को भूल जाता है। आवश्यकताए आविष्कार की जननी होती हैं, और मिस्टर राजेश जानते थे कि क्रोध करने पर मौखचो म रहना होगा और नौकर नहीं रहग। सरकस वाले रुपए के जोर पर नौकर पा गए थे या इनके सयम की कथा ने उ ह आकर्षित किया था, यह फैसला कठिन है। इस शाप-भ्रष्ट योगी की सवा मे इहलोक के साथ-साथ परलोक भी बन जायगा, यह नौकरो का विश्वास था। वे अपन बच्चो के कपडे शेर के नीचे बिछा कर तब उन्ह पहनाते थे। इस महायोगी के उतर कपडे उनक बच्चो का कल्याण करेंगे यह उ हे दृढ विश्वास था। योगी के अभिनय म क्रोध ठीक नहीं बठता और राजेश दुर्वासा नही बनना चाहते थे। शायद इस सयम म करुणा की भूख का हाथ भी था।

डेमी की सहायता से सिंह ने जो स देश दिया वह डाक्टर थाणेकर ने तार बाबू की तरह अक्षर-अक्षर करके लिखा और फिर दोनो डाक्टरो ने उसे पढा। उत्तर म डाक्टर रमेश ने कहा—भाई यह सब तुम्हारे कहने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारी मनोव्यथा की कल्पना कर सकता ह। सचमुच तुम्हे अनेक अभाव अखरत होगे तुम्हारे सरकस म आनेवाली सुदरियाँ तुमसे 5-7 गजपर भी हो, तो भी रूमाल नाक से लगा लें और तुम्हारे पहाडों के ठीक उत्तर देन पर चकित हो, यह तुम्हें अवश्य पीडा पहुँचाता होगा।

रोटी, रोजगार विवाह मान-मर्यादा पुत्र मकान आदि वाछनीय हैं, जीवन के अभाव ह, पर मानसिक अभावो की ओर मानव ध्यान भी देता है कभी? शारीरिक इन्द्रिय-जय भूख क अलावा एक और भी भूख होती है। पर सहज प्राप्त होन के कारण मानव को उसका भान ही नही होता। प्रम, स्नेह दया, माया, रूठना मनाना आदि न हो तो समस्त वैभवो से युक्त जीवन—ससार के श्रेष्ठतम साहित्यिक या कलात्मक रचनाओ क स्वामी का जीवन भी दूभर हो जाएगा, इसकी कल्पना मैं कर सकता हू। सरकस का मालिक अ यपक बनना चाहता है, यह तुमने नई बात बताई। वह तुम्हारे लिए एक सिंहनी ला देने की बात सोच रहा है, और देखना चाहता है कि तुम्हारे बच्चे मानसिक रूप से सिंह ही रह जात हैं या मानव मस्तिष्क का भी कुछ

यश उनमें आता है। उसकी इस महत्त्वाकांक्षा के पीछे अपनी अमरता के साथ तुम्हारे प्रणय अभाव की पूर्ति की भी चिन्ता है, यह मत भुलाना। उसे क्षमा कर देना तुम्हारे लिए कठिन है, पर बेचारे को क्षमा कर के जीने दो। उसे इस बारे में मुझसे बात करने को कह देना। मैं उसे डरा दूंगा कि मिहनी से ब्याह करने से तुम्हें जो मानसिक आघात पहुंचेगा, उससे तुम पागल भी हो सकते हो या मर भी सकते हो। शापभ्रष्ट योगी का ब्रह्मचर्य स्थिर रहे, तभी वह कथा सुन्दर रहेगी। फिर वह कभी मिहनी लाने का नाम भी न लेगा। यह सब तुम्हारी खातिर है, वरना हम दोनों डाक्टर तो तुम्हारे बच्चे देखने के लिए अपने जीवन के कुछ वर्ष तक दे डालने को तैयार हो जाएँगे।

मिलते रहा करो भाई! तुम्हारे कहे अनुसार लीला को जेवरों और साड़ियों का पार्सल गुमनाम भेज दिया था। उसके दाम सरकस के मालिक ने दे दिए थे। तुम्हारे पांच हजार अभी उस पर बाकी हैं। और भी तुम जब जो चाहो वह सहर्ष देगा, क्योंकि तुम उसके अन्नदाता हो। रूप से सिंह शरीर मिल सकता है मानव शरीर नहीं। 'राखे जहिं विधि राम नहिं विधि रहिए।' हम भोजन करने जाते हैं। तुम्हें हमारे भोजन से न तो तृप्ति होगी न उसका पता ही होगा। नमस्कार।'

'मैं निमला जागीरदार बोल रही हूं। क्षमा करें डाक्टर साहब, पर भैया का हाल पूछने के लिए इस बेवक्त फोन करना पड़ा।'

'धन्यवाद आप 15 दिन के बजाय भैया को एक मास रखें, हम कोई मिलने न आवेंगे आपके आदेशों का अक्षरशः पालन होगा और हम आपसे उऋण नहीं हो सकते। भैया के सैक्रेटरी के हाथ उनके बही खाते, हस्ताक्षरों के नमूने पारिवारिक चित्र तथा जो जो चीजें मैं और भाभी स्मृति लौटाने में सहायक समझेंगी पूर्ववृत्त लिखकर आपके पास कल तक भेज देंगी।'

डाक्टर ईश्वर का दिया हमारे पास सब कुछ है। खर्च की चिन्ता न करना। भैया के प्राण बचाए हैं तो उनकी स्मृति को पूर्णतः लौटाने की पूरी कोशिश करें। यह कहना व्यर्थ है कि आप भैया के विलायत के मित्रों में उन्हें सबसे अधिक प्रिय हैं। भैया के अलावा हमारा है ही कौन? हम न दे सकें पर ईश्वर आपको इसका प्रतिफल देगा। नमस्कार कहकर निमला ने फोन रख दिया और पास खड़ी अपनी भाभी से लिपट गई। भाभी ननद हर्ष से खुल कर रोईं।

× × × ×

मिस्टर जागीरदार आज अस्पताल से घर जाएंगे उनकी पट्टियां खुल

गई हैं और वे स्पेशल वार्ड के एक कमरे में चाय पी रह है। डक्टर ने आकर पास पडी कुर्सी पर बैठकर कहा—'भाई रा—, नही जागीरदार तुम्हारी बहन व पत्नी आती होगी और मुझे विश्वास है कि व तुमको बिल्कुल स्वस्थ पावेंगी। शान्ति से दो एक साल बिना भावुक हुए रहना तुम्हारे लिए जरूरी है। इतने बडे आपरेशन के बाद आश्चर्य करके अथवा किंकत्तव्यविमूढ होकर किए कराए पर पानी मत फेर देना। हृदय की दुबलता अर्थात् भावनाओ से सतर्क रहना और खोपडी से काम लेना। मानव जो भी कर सकता है मैंने कर दिया है, आगे इश्वर मालिक है। मैंने तुम्हार घरवालो को कह दिया है कि इतनी बडी चोट के बाद यह सम्भव है कि तुम कई बातें बिल्कुल भूल जाओ। वे यदि आश्चर्य दिखाएँग, तो तुम्हे नुकसान हो सकता है, क्योकि इसस तुम्हे मानसिक आघात पहुँचेगा, और बार-बार मेरा दिमाग कमजोर है यह सुझाव मिलेगा। सो वे तो तुम्हे तुम्हारा अभिनय पूरा करने म पूरी पूरी सहायता देंगे ही। इन पन्द्रह दिनो में तुम परिवार के चित्रो, हस्ताक्षरो अपनी आदतो आदि से परिचित हो ही गए होग। नौकरो व सक्रेटरी को मैं तुम्हे खिडकी से दिखा भी चुका हूँ। जरा होशियारी से काम लोगे तो कोई कठिनाई न होगी। कल बैंक ने तुम्हारे हस्तखती चैक का भुगतान कर दिया है। बेचारा सरकस का मालिक दस हजार लेकर भी सन्तुष्ट नही हो रहा था। तुम्हारे सिंह शरीर का भी वह स्मृति चिह्न के तौर पर ले गया है। मेरी फीस का चैक देते समय तुम दिमाग से काम लेते हो या हृदय से यही देखना है।

'लो वह तुम्हारी पत्नी आ रही हैं। उठ मेरे शेर, यह सिंहनी नही है। बहन तुम्हारी डाक्टर भागकर से सलाप म लगी प्रतीत होती है, तभी तो पत्नी अकेली आ रही है। अच्छा नमस्कार।'

डाक्टर के जाते ही मिस्टर जागीरदार उठे और आती हुई तरुणी को लिपटाकर बोले—लीला मेरी रानी।'

उत्तर मिला सिसकियों म—'नाथ!' और उसके कोमल हाथ फिर रहे थे मिस्टर जागीरदार के ललाट पर, जहा गडर गिर जाने की चोट का निशान अब भी था।

उसका टुकडा

प्रिय निमना,

आशा है मेरा कलकत्ते से भेजा पत्र तुम्हे मिल गया होगा। हम यहा पहुँचे एक माह हो चुका है पर अभी तक ऐसा लग रहा है जैसे हम किसी होटल म बैठ हो। माता जी तो, जब तक पिताजी फस्ट क्लास अफसर नही हुए थे तब तक छह या सात साल दादा जी के साथ यही रही थी। वे यहा के सभी रिश्तेदारो को जानती है और यहा आकर घर की शाति का अनुभव करती है। पर मेरी तो समझ मे ही नही आता कि मेरा घर कहा है ? पिताजी बगाल के कई शहरो मे बदलते रहे हैं। हर बार नया शहर, नई कोठी और नया कालेज देखने की मैं आदी हो गयी हू। हम लाहौर म पढती थी, फिर देहली आ गई। न लाहौर का हास्टल हमारा घर था न देहली का। अब तुम्हार पिताजी मिर्जापुर से बदलकर गोरखपुर बठे हैं। बताओ तुम्हारा हमारा घर है कही ? कहते हैं मैं बचपन म एक बार यहाँ आ भी चुकी - पर मुझे तो कुछ भी याद नही है। प्रकृति की विशालता के प्रतीक बडे-बडे पहाड ढाल नदिया तथा छोटे-मोटे मकान तथा गाव है। यही घर है क्या मेरा ? पर बडे शहर मे बडी कोठी म भी तो मुझे यहा लगता है कि यह भी मेरा घर नही है। आखिर मेरा घर है कहाँ ?

आज स पन्द्रहवें दिन बारात आएगी। वर महाशय धनी पिता के एकमात्र पुत्र है। पिछले साल यहा के थर्ड-क्लास कॉलेज म थर्ड डिवीजन म बी ए कर चुके हैं। उनका कोई दोष नही है। फोर्थ डिवीजन तो होता ही नहीं है, वे क्या करते ! इससे पहले भी उन्होंने बी ए की परीक्षा दी थी। उस बार परचे इतने कठिन आये थे कि परीक्षकों को कहना ही पडा

'बसमार ! मुकरर, इर्शाद !' इन्हीं को विलायत भेजने से पहले, इनके पिताजी इनका ब्याह कर देना चाहते हैं। मुझे भी एम ए करने के लिए दो वर्ष मिल जाएँगे। कुछ दिनों के लिए एक और घर देखना होगा, फिर वही देहली का हास्टल, तुम, मैं और घनश्याम। मैंने उस सोने के गुड्डे को देखा तक नहीं है पर न जाने क्या मुझे उससे घृणा हो रही है।

यहाँ के लोग भी पिताजी को परदेसी ही समझते हैं। अन्तर यही है कि बंगाल के शहरों में परदेसी प्रिंसिपल की खुशामद व इज्जत होती थी और यहाँ बस क्या बताऊँ। निरक्षर भट्टाचार्य सड़े कपड़े पहनने वाला गन्दा जंगली मजदूर भी पर इकट्ठे करके फौजी अटेंशन की मुद्रा में अकड़ कर खड़ा हो, यह प्रतीक्षा करता है कि वे उसके पैर छुएँ। और पिताजी हैं कि भीगी बिल्ली बनकर उनके पैर छूते हैं, उनसे गले मिलते हैं ! बूढ़ी-बूढ़ी औरतें आती हैं और प्रेम दरसाने को मुझसे गले मिलती हैं। जान न पहचान, बड़ी खाला सलाम ! मैं तो इस ढोंग से ऊब गई हूँ।

सारा दोष माँ का है। पिताजी रानीगंज में कोठी खरीद रहे थे। उन्होंने जिद करके दादाजी के समय के कच्चे मकान को पक्का करवाया। अब वे हम लोगों को सदा के लिए इस कोने में ही बगान का ढोल बना रही हैं। यही करना था, तो मुझे पढ़ाया ही क्यों ? वर महाशय बैरिस्ट्री करने विलायत जायेंगे और लौटकर इसी जिले की कचहरी में प्रैक्टिस करेंगे। वही जिला वही संस्कृति वही गंदे लोग, वही सोने का गुड्डा ! बताओ मैं क्या करूँ ?

यह सब तुम घनश्याम को लिख देना। मैं कैसे और क्या लिखूँ ? अब परीक्षा फल की मुझे खुशी नहीं रह गई है और न आगे एम ए करने का चाव ही। पर सोने का गुड्डा व उसके पिताजी अपनी दासी को एम ए देखना चाहते हैं। फिर कपूर की डलिया की तरह हवा न लगे, ऐसी डिबी-नुमा हवेलियों में सहेज कर रखेंगे ! 'घुटके मर जाऊँ, यही मरजी मेरे सैयाद की' ! हाय मैं मर क्यों नहीं जाती !

बनखण्डी (कांगड़ा) तुम्हारी अभागिन

सत्या

O

मेरी,

तुम्हारा करुण पत्र आया। मुझे तुम्हे इस प्रकार सम्बोधित करने का हक सदा से ही है और रहेगा फिर तुम चाहे घनश्याम की हो जाओ चाहे सोन के गुड्डे की। हाँ तो मेरी, बताओ तो जरा तुम क्यो नाराज हो उस सोन के गुड्डे से ? तुमने उसे देखा तक नहीं है, फिर यह नाराजगी क्या ? शिक्षा का अर्थ तो व्यक्ति का चहुमुखी विकास है और हर हालात मे अपने आपको कम से कम अशांति के साथ फिट कर लेना ही तो सुसंस्कृत जीवन है न ? प्रत्येक स्थिति को अपने अनुरूप बना लेना, अपना सा रंग लेना ही तो व्यक्तित्व है।

तुम लिखती हो कि तुम बचपन में गाँव गई थी उसकी तुम्हे कुछ भी याद नहीं है। यह याद नहीं न होता, तो हमारा जीवन भार हो जाता। जन्मान्तरो के पाप-पुण्य का फल भोगने के लिए जो मैं' मजबूर होता है, वह, वह मैं' नहीं है जो इन पाप पुण्यो को करके आया है। इस जन्म के पाप-पुण्यो को भी कोई और ही मैं' भोगेगा। यदि इन दोनो मैं' का अलग-अलग भान लें तो फिर पेट भरकर मनमानी कर सकते हैं। समाज और संस्कृति नष्ट हो जाएँगे। केवल यही ख्याल रखना पड़ेगा कि इसी जन्म मे इसी 'मैं' को पुलिस न पकड़ ले मजिस्ट्रेट जेल न भेज दे। दूसरी ओर यदि मैं की अजर अमरता का भान चौबीसो घंटे रहे तो जीवन, जीवन ही नहीं रहेगा। मृत्यु के पटाक्षेपो मे छिप इस 'मैं' के वही मैं होने का आभास रहा तो कितनी घृणा कितनी निराशा, कितनी ग्लानि फैल जायगी। कितनी ही बढिया याददाश्त क्यो न हो फिर भी यह मैं पिछले पाँच वर्षो के जीवन का ही तो नाम मात्र है न ? बचपन की आकांक्षाए, उमगें, घृणा, प्रेम आदि आज कोई मूल्य नहीं रखते और आज की चाह दस वर्ष बाद इतनी तेज नहीं रह जाएगी। स्मृति पर जोर डालें, तो एकाध बात तो 50 साल पहले की भी धुंधली सी याद आ जाएगी, पर पिछले जन्म की बात तो एकदम साफ हो चुकी है। हा संस्कार साथ है। हम है ही जन्म जन्मान्तरो की अनुभूतियो की समष्टि। तभी तो बिना देखे ही तुम सोन के गुड्डे से नाराज हो। प्रत्येक बात संस्कार का ही फल है, और मैं तो समझती हू, यह विस्मृति बडी ही अच्छी चीज है। जो स्लेट धुलेगी ही नहीं वह कितनी गंदी होगी कि उस पर कुछ लिखा ही नहीं जा सकता।

हम हैं क्या ? उस अनन्त के छोटे से टुकड़े। कितने छोटे ! उफ, इसकी कल्पना करने को भी मन नहीं चाहता। अपनी लघुता को स्वीकार न करने की यह कोशिश भी यही साबित करती है कि हम बड़े हो रहे हैं या होना चाहते हैं। लता, पेड़ आदि सब बढ़ते हैं। हम भी लुढ़क रहे हैं पूर्णता की ओर। जबसे सृष्टि बनी है, हम उसी ओर चल रहे हैं और पहुँचेंगे जरूर। 'याद नहीं' की पगडंडी में इस 'मैं' का ही मैं मान लेने की भूल हम कुछ लेट कर सकती है। पर इस अनन्त दौड़ में एक या दो जन्मों की देर कोई देर नहीं कही जा सकती।

इस पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर डालो। फिर बैठकर उन टुकड़ों को जोड़कर पत्र पूरा करने का प्रयास करो। पहली लाइन का पहला शब्द अन्य लाइनों के शब्दों से मेल नहीं खाएगा, और यदि खाता दिखाई भी दिया, तो वह मेल आगे चलकर अर्थ लगाओगी तब खटक जायेगा। बार-बार ऐसी भूल होगी और तुम खीज उठोगी। पर इन टुकड़ों को जोड़ने वाला या जुड़ जाय यह चाहने वाला वह खिलाड़ी खीज व क्रोध से रहित है। वह चाहता है सब टुकड़े यथास्थान फिट हो जाय, पत्र पूर्ण हो जाय।

इस 'याद नहीं' के फेर में अपने आगे पीछे फिट होने वाले टुकड़ों की खोज में अन्य टुकड़े आएँगे और तुम्हें अपना फिट होने वाला टुकड़ा समझ ले भागेंगे, अपने अन्य टुकड़ों की खोज में। जब असली टुकड़ा मिलेगा, तब भूल का पता लगेगा और दोनों अपना-अपना रास्ता लेंगे। या भी संस्कारों से पता लग जाता है या फिर साथ रखकर पता लगता है कि टुकड़े फिट नहीं है। दोनों दुखी होते हैं। सम्भव है—जहर खा लें। पर अन्त तो है ही नहीं—तब तक नहीं जब तक पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं हो जाती। इस तेजी से होने वाली खोज में दो ही रास्ते हैं। एक है चुपचाप शान्ति से बिना दूसरों को धक्के अपने टुकड़ों की खोज व प्रतीक्षा। तुम में यदि व्यक्ति व का विकास हो चुका है यदि तुम्हारे संस्कार परिपक्व हो चुके हैं तो अन्य टुकड़े तुम्हें लेकर नहीं भाग सकते गुमराह नहीं कर सकते, उल्टे तुम्ही उन्हें धीमा करके ठीक रास्ते पर ला सकोगी। समझदारी इसी में है कि शान्ति से अपने फिट होने वाले टुकड़े खोजे जायँ। अविनाशी 'मैं' में जन्म जन्मान्तरों के चक्कर में भूले एकत्व का ध्यान रखें तो दूसरे को धक्के कर अपनी खोज जल्दी पूर्ण करना अप्रिय ही लगेगा—मैं, सच्चे मैं को यह पसन्द नहीं आएगा। यही मार्ग वह मार्ग है जिसमें टुकड़े स्वयं खिंचकर यथास्थान अपने आप फिट होने लग जाते हैं। तुम केन्द्र बनकर प्रेरित करती हो। एक दो जन्मों की देर या एक दो जन्मों का अभ्यास इस महान दौड़ में कोई

लम्बा समय नही है। यही रास्ता गाधीजी बुद्ध ईसा आदि ने अपनाया था। इस ही जैन काललब्धी कहते है। दूसरा माग जरा सीधा लगता है। वह है अन्य टुकडो को धकेल कर, गडवड मचाकर, मिले टुकडो को भी तजी से खाजते हुए उलट-पुलट कर जल्द से जल्द अपने फिट होते टुकडा को खोज निकालना, शाति स जो टुकडे प्रतीक्षा मे बठे है, उन्हे ले भागना और ज्योही पता लगे कि वे तुमसे फिट नही होते, उन्हे धकेल कर और टुकडा को ले भागना। इस प्रयास म सम्भवत इस पत्र की एक आध लाइन बहुत जल्दी जोडी जा सकती है। पर एक शब्द या लाइन के जुड जाने से पत्र आशिक तौर पर ही जुडा हुआ कहलायगा। असली पूर्णत्व तो वही है जब सब टुकडे यथास्थान फिट हो जाए और पत्र पूर्ण हो जाय। यह दूसरा माग हिटलर, जार आदि ने अपनाया था और मानवता आज भी कराह रहा है।

हम सब यथास्थान पहुचग जरूर। याद नही' की पगडडी हमे घुमा फिरा कर रास्त पर ही ला छोडेगी। पगडडी दिखती छाटी है पर वास्तव म यह चक्करदार ह, लट लगती है। क्यो तुम गणित मे ही कमजोर थी और घनश्याम अग्रेजी मे ? क्या एक दूसरे की पढाई म मदद करने का बानक बना ? क्या तुम एक दूसर की ओर ही आकृष्ट हुए ? कालेज मे कइ लडके और भी तो थे। बुरा मत मानना, घनश्याम से कही सुदर कही प्रतिभावान, कही धनाढ्य। क्या यह भी 'याद नही' का ही तमाशा नही है ? कौन कह सकता है, तुम दोना कितने जन्म किस-किस रूप म साथ रह हो और एक दूसरे के टुकडे हो भी या नही ? तुम्हारा घर है कहा, इसका उत्तर 'याद नही' के चक्कर से निकालोगी तभी मिलगा।

चुपचाप बठकर पढी लिखी लडकियो की बुराई का दृष्टात बनने से बचो। मान का गुड्डा तुम्हारा टुकडा न हुआ, तो दो-एक जन्मो मे ही पिण्ड छूट जायगा और घनश्याम ही तुम्हारा टुकडा है तो तुम उसे नि सदेह पा लोगी। हो सकता है, इस जन्म म ही पा लो। मैंने घनश्याम को पत्र लिख दिया है। और मैं तुम्हारे दद की कल्पना कर सकती हू बहन। पर चारा ही क्या ह ? राखे जेहि विधि राम तहि विधि रहिए। सौभाग्यवती होओ। उत्तर देना और पढी लिखी लडकियो का नाम मत लजाना, समझी !

गोरखपुर। तुम्हारी—निमला

O

/

दीदी, सादर प्रणाम।

आपके पत्र से सारा हाल ज्ञात हुआ। मैं क्या कहूँ, क्या करू ? सरया सदा के लिए पराई हो जायगी और मैं कुछ भी नही कर सकता, यह

विचार ही मुझे पागल बना देने के लिए काफी था। ऊपर से माँ का स्वास्थ्य और घर की दशा देख बस मैं जीवन से ही ऊब बैठा हूँ। डाक्टरों की राय के अनुसार आज माँ को ननिहाल पहाड़ पर ले जा रहा हूँ। जब से बहन मरी है, वे सूखती ही जा रही हैं। उन्हें तो बस एक ही रट लगी है बेटा घनश्याम ब्याह कर ले। मेरी दशा तक उन्हें नहीं सूझती। वे भी दिन थे, जब मेरे चेहरे से वे सब ताड़ जाती थीं। ईश्वर सत्या जैसे रत्न का उचित मूल्य लगा सकने वाला जौहरी उसे दे और क्या कहूँ। ननिहाल से फिर पत्र लिखूँगा।

देहली।

तुम्हारा—घनश्याम

○

प्रिय निर्मला,

तुम्हारा पत्र यथासमय मिल गया था। मैंने पढ़ने को खोला ही था कि दो-चार बूढ़ी चुड़ैलें आ गईं। पढ़ना तो यहाँ जुर्म है ही, उसका मजाक भी उड़ाया जाता है। मैंने लिफाफे में पत्र वापस डालकर मेज पर ही रख दिया था कि फिर पढ़ूँगी। फिर बहुत खोजने पर भी वह नहीं मिला। शायद उन्हीं डायनों में से कोई चुरा ले गई है। पत्रों को ये प्रेम पत्र के अलावा कुछ और समझ ही नहीं सकतीं। ऐसा सुसंस्कृत है हमारा यह पहाड़ी जिला! खैर जाने दो। हाँ सुनो, मुझे बहुत कुछ कहना है। अठारह तारीख को बारात आई थी। गाँव वालों ने हमसे असहयोग सा कर रखा था। दुगुना तिगुना खर्च करके भी काम ठीक वक्त पर ठीक-ठीक नहीं हो रहा था। पिताजी का कसूर यही है कि उन्होंने नाम पैदा किया है धन कमाया है, पर हल नहीं चलाया, गाँव में नहीं रहे। ईश्वर इन पापियों को देखे। न जाने किसने वर को बहका दिया कि मेरी एक आँख ही शेष है दूसरी फूट चुकी है। वर इस जिले के सबसे बड़े रईस का एक ही लड़का था। ऊपर से बी० ए० (थर्ड क्लास) व विलायत जाने वाला! अकड़ गया। मेरे पिताजी ने पैर पकड़े कसमें खाईं पर वह टस से मस न हुआ। इज्जत जाती देख पिताजी ने कड़वा घूँट पिया और यह मंजूर कर लिया कि वर कन्यादान के पहले मुझे देख ले और अपना संतोष कर ले।

रात के ग्यारह बजे थे, बहन। कलकत्ते के गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल मेरे यशस्वी पिताजी ने मुझे बुलाकर कहा— बेटी इन गाँव वालों से भगवान बचावे। किसी ने वर को बहका दिया है कि तेरी एक ही आँख है।

मैं ग्रौर गौरी (मेरे गाव मे रहने वाला हमारा एक दूर का रिश्तेदार) समझा कर हार गए हैं पर वह गधा मानता ही नही है। मैं यह तय कर ग्राया हू कि कन्यादान से पहले मदिर मे तुझको ले जाकर उसे चुपचाप दिखला कर उसका सतोष करा दू। चुपके से जूते पहन ग्रा बिटिया। तेरी मा का पता न लगे। वर गौरी के साथ मदिर गया है। गौरी की यह गवाही वह मान लेगा कि उसे मैं, ग्रौर कोई लडकी दिखाकर धोखा नही दे रहा हू। यह कहते-कहते पिताजी के नेत्र भर ग्राए थे।

मैंने क्रोध को पीकर कहा—'मैं ग्रभी ग्राई, पिताजी।' मैंने मा को कह दिया कि मैं व पिताजी कही जा रहे हैं, ग्रौर मैं पिताजी के साथ हो ली।

सचमुच ही वह सोने का गुड्डा हृदयहीन था। मुझे उस जगली ने ऐसे घूरा, जैसे भूखा रोटी को घूरता है। फिर नवाब साहब ने फरमाया—'ठीक है।' ग्रौर चल दिए डेरे की ग्रोर। हम भी लौट ग्राए। पिताजी की जान मे जान ग्रा गई थी। बिना ब्याह बारात लौट जाने की ग्राशका से वे मुक्त हो गए थे, सो ग्रपमान को भूल गए ग्रौर खुश होकर बोले—'कितनी सुन्दर है तू बिटिया'! ग्रौर उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा।

बहन! जरा कल्पना करो मेरे मनोभावो की। ग्रपने ग्रापको फर्नीचर की तरह निर्जीव वस्तु समझना मुझे बहुत ही ग्रपमान जनक लगा। इस थर्ड क्लास बी ए को तो मैं ही वर्षों पढा सकती थी। खूब खरीदा है इसके बाप ने मुझ बकरी को। मेरे पिता का यह ग्रपमान इसीलिए तो हुग्रा कि उन्होंने मुझे जन्म दिया है। उन्होंने वह सहा जिसकी कोई कल्पना भी नही कर सकता। उनके मुह पर उनकी क्षमता तक का ग्रविश्वास किया गया ग्रौर वे पैर पकडते रहे! इसीलिए तो कि वे मुझ ग्रभागिनी के पिता हैं। वे मजबूर थे। बगाल जाकर क्या कहेंगे? यहा क्या इज्जत रह जाएगी? मा ग्रलग उनका जीना दूभर कर देगी। बहन, इन दो-तीन घण्टों मे उन्होंने नरक भोगा। क्या, इसलिए कि मैं जन्मते ही मर नही गई थी। मुझे घर पहुचाकर पिताजी शादी के काम मे व्यस्त हो गए ग्रौर मा को ग्रौरतो ने घर रखा था। मैं ग्रपने कमरे मे ग्रलग ग्रकेली पडी रोती रही ग्रौर भगवान से तुरन्त मृत्यु मागती रही।

ब्याह का मुहूर्त था, प्रातःकाल 5 बजे का। मुझे सजाकर मानो बलि देने को मण्डप मे ले गए। कन्यादान का समय ग्राया। तभी मुझे ग्रन्दर से कुछ प्रेरणा सी हुई। भगवान ने मेरी सुन ली थी। एक झटके से मैंने घूघट हटा दिया ग्रौर खडी हो गई। मैंने हाथ जोडकर सबको नमस्कार

किया और एक व्याख्यान दे डाला। तुम उसे सुनती तो नाराज न होकर खुश हो जाती और मेरी पीठ ठोके बिना न रहती। वर के हठ की बात का बारात तक के लोगों को पता न था। मैंने जब उसकी मंदिर में जाकर मेरी परीक्षा की बात कही, तो सब स्तब्ध रह गए। रात में रुंधे गले से मैंने कहा था—'ब्याह जीवन भर का प्रश्न है। आज मेरी दोनों आँखें हैं। कल एक न रहे, तो इस शख्स से मुझे तो यह आशा नहीं है कि यह मेरा साथ देगा। मैं इससे शादी नहीं करूँगी। यह मंदिर में मुझे देखकर कह आया है कि ठीक है। मैं कहती हूँ, यह ठीक नहीं है।

मेरा गला भर आया था। मैं वहाँ से भागी और भीतर आकर पिताजी के पलंग पर पड़कर रोने लगी। कुछ देर बाहर हंगामा मचा। बारात वाले गरज उठे कि हम या तो ब्याह कर ले जाएँगे या हरजाने का दावा करेंगे। कुछ बोले कि जबरन पकड़ कर ब्याह लेंगे और ले जाएँगे। इस गाँव में बारातियों के भी रिश्तेदार हैं और हम तो परदेशी ठहरे ही। मैं काँप उठी। इतने में ही पिताजी भीतर आये और मेरे सिर पर हाथ फेर अलमारी में से पिस्तौल निकाल कर चल गए। बाहर पहुँच कर वे गाँव में पहली ही बार अपनी अधिकारपूर्ण आवाज में गरजे—'पाँच मिनट में आप लोग यह कम्पाउण्ड खाली कर दीजिए। मैं घड़ी देख रहा हूँ, फिर मैं सबसे पहले इस जानवर को (लाला के गुड्डे को) इस पिस्तौल से उड़ा दूँगा। आपको हर्जाने का दावा या जो कुछ भी करना हो आप शौक से करें। पर यह कम्पाउण्ड पाँच मिनट में खाली कर दें। मेरी अक्ल पर पत्थर पड़ गए थे। जाइए शादी नहीं होगी। उठिए, जाइए।

बहन, सारी उम्र का भोंडा पर नियन्त्रण का ताला था, उनका अभ्यास जादू का सा चमत्कार पूर्ण था। लोग मन्त्र प्रेरित की तरह उठे और बड़बड़ाते चले गए। जनवासे के तम्बू वगैरा उखाड़ लाने का हुक्म देकर पिताजी भी भीतर आ गए। मुझे पुचकारा, प्यार किया और सुबककर रोए। माताजी व सारा गाँव हम बाप बेटी से नाराज है। माताजी जब तब इन्हीं छुट्टियों में मुझे किसी के गले मढ़ देने की जिद कर रही हैं। पिताजी आज यह खबर सुनकर आए हैं कि उन पर पिस्तौल दिखाने मारने की धमकी देने मानहानि करने आदि के लिए फौजदारी में नालिश की गई है। तुम क्या कहती हो, फौरन लिखो। घनश्याम का कोई पत्र आया क्या?

बनखण्डी (कांगड़ा) तुम्हारी—सत्या

O

प्रिय निमला,

गाव वाले घबरा गए है। उनकी आख अब गुनी है। वह केस डिप्टी कमिश्नर के यहा था। पिताजी जब वकील करके कोर्ट म पहुचे तो उन्ह देखत ही डिप्टी कमिश्नर श्री मजूमदार खड़े हो गए और नमस्कार किया। पिताजी को कुछ भी समझ म नहीं आता देखकर व बोले— मैं आपका हुगली-कॉलेज का छात्र वीरेन हू श्रीमान। कस पधार। जब उन्ह पता लगा कि य फौजदारी म अभियुक्त के रूप म आए है तो कुर्सी मगाकर अपने पास बिठा लिया और खाने के गुड्डे के वकील स सारा मामला सुनकर उन बाप बेटे को वह डाट बताई कि उनकी तबीयत खुश हो गई। पम वाला म यह दम कहां कि वे जिले के डी सी का नाराज कर सकें। कस तभी वापस ले लिया गया। मजूमदार बाबू न तो पिताजी स कहा भी था कि आप मान-हानि की नालिश कर दें। पर पिताजी कहते है अपनी करनी व खुद भोगग। मैं तो सरस्वती का सेवक हूं। मानहानि तो लक्ष्मी क लाडला की होती है और वे ही उसकी मरम्मत को व्यग्र रहत हैं।

वीरेन बाबू ने बहुत हठ करक पिताजी को दो दिन अपन यहा ही रोक लिया। उधर व शिष्य को सवा मजूर करने बठे थ और इधर मेरा बुरा हाल था। विदेश म यह सकट आया था। फौजदारी क अभियुक्त हैं पिताजी। भगवान तू ही रक्षक ह इस विदेश म। उन्ह मुजरिम करार दिया जाय, इसस पहले ही मुझे मौत द देना यही मैं मनाती थी। पिताजी इस कस मे हमार वकील श्री रामचन्द्र जी क भानज से मेरी सगाई कर आए ह। ये हजरत फर्स्ट-क्लास बी ए है। केवल बीमार मां की सेवा क लिए ब्याह कर रह है। बीबी दासी स सस्ती पड़ती है न? यमराज भी मुझे भूल गए प्रतीत होत ह। परसा फिर बारात आएगी।

बनवण्णी (कांगड़ा)

तुम्हारी—सत्या

O

दीदी, सादर प्रणाम।

बात क्या है? क्या एम ए म भर्ती नहीं होगी? फिर आई क्यो नहीं? मैं यहा आज ही पहुंचा हू। मुझ किसी अज्ञात शक्ति न कठपुतली बना दिया है। मैंन मां क हठ स उनके स्वास्थ्य को देखत हुए ब्याह कर लिया है। सुहागरात के दिन मैंन सिगरट फूंकत हुए वधू के कमर म प्रवेश किया था। सोचा था कि पहल ही दिन उस पर पकड़ कर उसम सब कह

दूँगा और अपनी माँ के लिए उसका गला काटने के अपराध की क्षमा माँग लूँगा। घूँघट ताने एक कोने में वह सहमी-सी चुपचाप खड़ी थी। मुझे सत्या याद आ रही थी, दीदी। मैंने गला साफ करने को जरा खांस कर कहा— आप जरा बैठ जाय, तो मैं कुछ कहूँ। मुझे बहुत कुछ कहना है।'

दीदी! उसने मेरे तमाचा नहीं मारा, उससे भी अधिक किया— यानी खिलखिलाकर हँस पड़ी। मैं घबरा गया दीदी। फिर कुछ देर बाद साहस करके आगे झपट कर उसका घूंघट हटा दिया। मुझे वह हँसी परिचित सी लगी थी। मैं डर रहा था कि मेरा दिमाग खराब तो नहीं हो गया है। पर जब देखा तो निश्चय ही हो गया। घूँघट के अन्दर सत्या थी। उसने मुझे अपने बाप के घर ही देख लिया था। मद घूँघट खींचकर ब्याहने क्यों नहीं जाते? मेरे ब्याह का मजा बिगड़ गया। सत्या अगले मास मां के साथ आ रही है और कालेज में भर्ती होगी। तुम कब तक आ रही हो?

देहली।

तुम्हारा—घनश्याम

प्रथम प्रकाशन
नया समाज कलकत्ता
दिसम्बर, 1952

रामजी की मरजी

यद्यपि मैंने अर्थशास्त्र में एम ए किया था तथापि मैं सेवाग्राम के संत के आर्थिक दृष्टिकोण का भक्त था। विदेशी प्रोफेसरों से अर्थशास्त्र पढ़कर और उन्हीं की बताई कसौटी पर भारत सरकार की राजस्व नीति की कटु आलोचना करके मैं सहपाठियों का प्रिय पात्र और अध्यापकों की दृष्टि में एक बड़ा ही होनहार छात्र बन गया था।

एक बात मुझे गांधी जी की दुर्बलता लगती थी। वह जब तक अहिंसा पालन पर उतारू हो जाते थे। जहाँ उलझन आई कि वे झट दिव्य प्रकाश की बाट जोहने लग जाते थे। सारा राजनीतिक खेल ठप हो जाता था क्योंकि बापू अंतःप्रेरणा की प्रतीक्षा में लग जाते थे। मैं नास्तिक नहीं हूँ पर अपने को इतना निर्जीव मान लेना मुझे पसन्द नहीं आता था। 'राम प्रेरणा करेंगे तब ही करोगे?' तो फिर राम को ही करने दो न! क्यों जल जाते हो? क्यों कष्ट सहते हो? यही मैं खीजकर सोचता और झुंझलाकर रह जाता।

एम ए करके मैंने बड़े उत्साह से अपनी फर्म के काम में योग देना शुरू कर दिया। मेरे पितामह हरगोविन्द जी ने अपने अध्यवसाय से हरगोविन्द रामभरोसे नामक गद्दी की स्थापना की थी। भारत में हुण्डी चिट्ठी करने वालों में हमारी कोठी अग्रगण्य मानी जाती थी मेरे पितामह के स्वर्गवास के समय मेरे पिता रामभरोसे जी बालक ही थे। संयुक्त परिवारों में जैसा हुआ करता है, उनके साथ भी छल किए जाने लगे। उनके चाचा के लड़के रामस्वरूप जी ने जब ज्यादा गड़बड़ शुरू की तब मेरी दादी जी ने उन्हें अलग कर दिया। उन्होंने भी हरगोविन्द रामस्वरूप नाम से कारोबार शुरू कर दिया और सोचा कि मासूम बच्चे के बड़े होने से पहले ही सारा कारोबार अपने पास खींच लेंगे। दादा जी के मित्र एक मुनीम ने उस गद्दी की रक्षा करके शहर भर में भगत जी नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की थी। जब पिता जी बड़े हुए तो उन्होंने पितामह के यश को चार चाँद लगा दिए। हमारी गद्दी की उन्नति से मेरे ताऊ रामस्वरूप

जी को ईर्ष्या होना स्वाभाविक ही था। उनकी शत्रुता की गाथाएं दादी जी सुनाती रहती थी। सो हम भी उनसे द्वेष रखते थे। दोनों गद्दियों म प्रतिस्पर्द्धा और खींचतान चलती। दोनों ओर से एक दूसरे को नीचा दिखाने, नुक्सान पहुंचाने के प्रयास होते ही रहते थे। ऐसी स्थिति मे स्वाभाविक ही था कि मैं अपने आफिस को आधुनिक बनाकर विशेष सफल बनाने का प्रयास करता। देश भर म हमारी धाक थी साख थी, यश था।

पिताजी दिन म एक दो घंटे ही गद्दी पर आते। बाकी सब समय मैं ही काम काज देखता। नवीन बैंकिंग प्रणालियों का सहारा ले मैं कारोबार को तेजी से बढ़ा रहा था।

हमारे हैड मुनीम जी वही भगत जी थे। प्रात लेट आना और अधिकांश समय माला जपते रहना उनका अभ्यास बन गया था। पिताजी को उन्होंने गोदी खिलाया था, सो पिताजी उनका मान करते थे। सारा दफ्तर उनसे दबता था। मैं मोटर की चाल से चलना चाहता था वे बैलगाड़ी की चाल से। मैंने पिताजी से कहा था कि उनकी पूरी तनख्वाह की पेंशन देकर काशी भेज दिया जाय पर भगत जी पेंशन का हराम समझते थे। जब भी कोई बात होती, वे कहते 'राम जी की मरजी भैयाजी' और मैं जल उठता। गाधी जी पर तो मैं अपनी खीज निकाल नहीं सकता था पर अपने वेतनभोगी मुनीम को सीधा करने का या घर बैठा देने का मैंने मन ही मन संकल्प कर लिया।

एक दिन मैंने आफिस म ठीक समय पर पहुँचकर बड़े मुनीम को याद किया। वह आए न थे। जब वह प्राय आध घंटे बाद आए तब मैंने उन्हें देर से आने का बड़ा उलाहना दिया। उन्होंने, जैसी मुझे आशा थी कहा कि मन्दिरों मे पूजा करते कराते देर हो जाती है। मैंने डांट कर कह दिया— 'आप घर बैठकर परलोक बनाइए हमारा काम एेसे नहीं चलता।" बेचारे भगतजी के नत्रों म आंसू आ गए।" वह बोले—' भैयाजी परलोक [illegible] सब ही सामाजिक काम भी चलेंगे। सब "राम [illegible] की मरजी" म [illegible]

"रामजी की मर्जी सुन [illegible] या।
कहा—' मैं वहम नहीं रखना चाहता [illegible] पर
मंजूर करें। हमारे सामाजिक [illegible] भी [illegible] अपना
लिए न लगावें।" [illegible]
होगी।" बूढ़ा बाबा।

हमारे एक मुनीम जी थे, मिस्टर शर्मा। वह मेरे एक सहपाठी के सम्बन्धी थे। चतुर थ, शिक्षित थे तरुण थ। मेरे उनके विचार मेल खाते थे। मैं चाहता था कि बूढ़ा घर बैठ जाय तो उन्हें हैड मुनीम बना कर दफ्तर की काया पलट कर दू।

अपनी उन्नति म बाधक भगत जी स वह भी चिढ़ते थे। मेरी शह पाकर उन्होंने मुझे मुनीम जी की गलतियां की इत्तला देने का नियम सा बना लिया। मुनीम जी बूढ़े थे भूल होना स्वाभाविक था और वर्षों की एकदम इत्मिनान म अभ्यास के कारण वह लापरवाह भी हो चुके थे। चुपचाप डांट खाते, गलती हो या न हो, यही कहते थे "रामजी की मरजी आइन्दा ख्याल रखूंगा भैया जी।" उनकी इस निरीहता पर मैं खीझ उठता। भला आदमी घर क्यों नहीं बैठ जाता ? क्यों न हमे भी राम जी की मर्जी पर छोड़ पूरी पेंशन ले लेता ? परेशान होकर मैंने पिताजी से फरियाद की। मुनीम जी को बुला कर पिता जी ने फैसला दिया कि भगत जी मेरे नियन्त्रण म नहीं रहेंगे उनकी सब बातो का फैसला पिताजी स्वय करेंगे। तारीफ यह कि मैंने अपने पक्ष का समर्थन किया था। मुनीम जी के घर बैठ जाने से सारे दफ्तर के सारे कारोबार की दशा म पर्याप्त सुधार की गारंटी दी थी। उनकी कई बातें भूलें प्रमाणित की थी। भगत जी खड़े मुस्कुरा रहे थ। एक बात भी प्रतिवाद म न कह कर उन्होंने यही कहा था— मैं बूढ़ा हो गया हूं, इसी से हो जाती है, अब राम जी की मरजी होगी तो नहीं होगी।"

पिता जी के इस भावुक फैसले से मुझे बड़ा क्रोध आया। इस ढिल-मिल रामजी की मरजी पर निर्भर मुनीम को लेकर तो मैं कुछ भी तरक्की नहीं कर सकूंगा। मैं भगत जी पर और भी कुढ़ गया। शर्मा जी से सलाह की। प्राय यह होता था कि भगत जी अपने खर्च को रोकड़ मे रुपए लेते और लिखना भूल जाते तनख्वाह के दिन रोकड़ पूरी कर देते। रोकड़ को अपनी समझने की कुटेव उन्हें पड़ गई थी। वैसे इमानदार पूरे थे। मैंने व शर्मा जी ने तय किया कि जिस समय रोकड़ कम हो शर्मा जी मुझे सूचना दें और मैं पिताजी को बुलाकर रोकड़ चैक करा दूं। मै जानता था, हुण्डी मे प्रत्येक व्यवसायी की तरह पिताजी रोकड़ की छोटी से छोटी कमी को भी क्षमा नहीं करेंगे। हमारे व्यवसाय म प्रत्येक क्षण रोकड़ बाकी का सही ज्ञान परमावश्यक है। अन्यथा किसी भी मिनट कुछ ही रुपयो के लिए दिवाले निकल जाते है। पिता जी इस बारे म बहुत ही सख्त थे।

जी को ईर्ष्या होना स्वाभाविक ही था। उनकी शत्रुता की गाथाएं दादी जी सुनाती रहती थी। सो हम भी उनसे द्वेष रखते थे। दोनो गद्दियों म प्रतिस्पर्द्धा और खीचतान चलती। दोनो ओर से एक दूसरे को नीचा दिखाने, नुकसान प चाने के प्रयास होत ही रहते थे। ऐसी स्थिति म स्वाभाविक ही था कि मैं अपने आफिस को आधुनिक बनाकर विशेष सफल बनाने का प्रयास करता। देश भर म हमारी धाक थी, साख थी, यश था।

पिताजी दिन म एक दो घट ही गद्दी पर आते। बाकी सब समय मैं ही काम काज देखता। नवीन बैंकिंग प्रणालियो का सहारा ले मैं कारोबार को तजी से बढ़ा रहा था।

हमार हैड मुनीम जी बड़ी भगत जी थे। प्रात लेट आना और अधिकाश समय माला जपते रहना उनका अभ्यास बन गया था। पिताजी को उन्होंने गोदी खिलाया था, सो पिताजी उनका मान करत थे। सारा दफ्तर उनसे दबता था। मैं मोटर की चाल स चलना चाहता था वह बैलगाड़ी की चाल से। मैंने पिताजी से कहा था कि उनकी पूरी तनख्वाह की पेंशन देकर काशी भज दिया जाय पर भगत जी पेंशन को हराम समझत थे। जब भी कोइ बात होती व कहत "राम जी की मरजी भैयाजी" और मैं जल उठता। गाधी जी पर ता मै अपनी खाज निकाल नही सकता था पर अपने वेतनभोगी मुनीम को सीधा करन का या घर बठा देने का मैंने मन ही मन सकल्प कर लिया।

एक दिन मैंन आफिस म ठीक समय पर पहुँचकर बडे मुनीम को याद किया। वह आए न थे। जब वह प्राय आधे घट बाद आए तब मैंन उन्ह दर से आन का कड़ा उलाहना दिया। उ होन, जैसी मुझ आशा थी, कहा कि मदिरो मे पूजा करत कराते देर हो जाती है। मैंने डाँट कर कह दिया— "आप घर बैठकर परलोक बनाइए हमारा काम एस नही चलेगा।" बचारे भगतजी के नेत्रो म आँसू आ गए।' वह बाले—' भैयाजी परलोक सम्हलगा तब ही सासारिक काम भी चलेंगे। सब 'राम जी की मरजी' मे ही होता है।'

'रामजी की मर्जी' सुन कर मुझ क्रोध चढ आया। मैंने झिडक कर कहा—' मैं बहस नही करना चाहता। आप या तो समय पर आयें या पेंशन मजूर करें। हमारे सासारिक लाभ के बच समय को आप अपने परलोक क लिए न लगायें।' "राम जी की मर्जी भया जी। अब वह चाहेंगे तो देर न होगी।" वृद्ध बोला। 'जाइए काम कीजिये', मैंन कहा और वह चल गए।

हमारे एक मुनीम जी थे मिस्टर शर्मा। वह मेरे एक सहपाठी के सम्बन्धी थे। चतुर व शिक्षित थे तरुण थे। मेरे उनके विचार मेल खाते थे। मैं चाहता था कि गद्दी पर बैठ जाय तो उन्हें हैड मुनीम बना कर दफ्तर की काया पलट कर दूं।

अपनी उन्नति में बाधक भगत जी से वह भी चिढ़ते थे। मेरी शह पाकर उन्होंने मुझे मुनीम जी की गलतियां की इत्तला देने का नियम सा बना लिया। मुनीम जी बूढ़े थे भूल होना स्वाभाविक था और वर्षों की एकदम हुकूमत व अभ्यास के कारण वह लापरवाह भी हो चुके थे। चुपचाप डांट खाते, गल्ती हो या न हो, यही कहते थे "रामजी की मरजी आइन्दा ध्यान रखूंगा भैया जी।" उनकी इस निरीहता पर मैं खीझ उठता। भला आदमी घर क्यों नहीं बैठ जाता? क्यों न हमें भी राम जी की मर्जी पर छोड़ पूरी पेंशन ले लेता? परेशान होकर मैंने पिताजी से फरियाद की। मुनीम जी को बुला कर पिता जी ने फैसला दिया कि भगत जी मेरे नियन्त्रण में नहीं रहेंगे उनकी सब बातों का फैसला पिताजी स्वयं करेंगे। तारीफ यह कि मैंने अपने पक्ष का समर्थन किया था। मुनीम जी के घर बैठ जाने में सारे दफ्तर व सारे कारोबार की दशा में पर्याप्त सुधार की गारंटी भी थी। उनकी कई घातक भूलें प्रमाणित की थी। भगत जी खड़े मुस्कुरा रहे थे। एक बात भी प्रतिवाद में न कह कर उन्होंने यही कहा था—"मैं बूढ़ा हो गया हूं इसी से हो जाती है अब राम जी की मरजी होगी तो नहीं होगी।"

पिता जी के इस भावुक फैसले से मुझे बड़ा क्रोध आया। इस ढिल-मिल रामजी की मरजी पर निर्भर मुनीम को लेकर तो मैं कुछ भी तरक्की नहीं कर सकूंगा। मैं भगत जी पर और भी कुढ़ गया। शर्मा जी से सलाह की। प्रायः यह होता था कि भगत जी अपने खर्च को रोकड़ से रुपए लेते और लिखना भूल जाते तनख्वाह के दिन रोकड़ पूरी कर देते। रोकड़ को अपनी समझने की कुटेव उन्हें पड़ गई थी। वैसे ईमानदार पूरे थे। मैंने व शर्मा जी ने तय किया कि जिस समय रोकड़ कम हो शर्मा जी मुझे सूचना दें और मैं पिताजी को बुलाकर रोकड़ चैक करा दूं। मैं जानता था, हुण्डी में प्रत्येक व्यवसायी की तरह पिताजी रोकड़ की छोटी से छोटी कमी को भी क्षमा नहीं करेंगे। हमारे व्यवसाय में प्रत्येक क्षण रोकड़ बाकी का सही ज्ञान परमावश्यक है। अन्यत्र किसी भी मिनट कुछ ही रुपयों के लिए दिवाले निकल जाते हैं। पिता जी इस बारे में बहुत ही सख्त थे।

एक दिन दोपहर को तीन बजे के करीब एक साधुओं का दल हरद्वार जाने का पिताजी की 200) देने की चिट्ठी लेकर आया। इन साधुओं को 300) दिए गए। 100) भगत जी की ओर से। यह खबर मुझे मेरे कमरे में आकर शर्मा जी ने चुपचाप दी। मैंने पिताजी को फोन किया कि आप अभी आकर कैश चेक करें। कारण पूछने पर मैंने कहा कि फिर बताऊंगा।

जब तक पिताजी आए मुनीम जी बैंक जा चुके थे। उन्हें रोकता तो बूढ़ा ताड़ जाता। सो मैंने यह कुछ नहीं कहा कि सेठ जी आ रहे हैं। वह बैंक से यथानियम सीधे अपने घर चले गए थे। मैंने सोचा—खैर सबेर सही, बूढ़े से जान छूटी।

दूसरे दिन मैं पिताजी को लेकर 9 बजे ही गद्दी पर आ गया। तिजोरी में दूसरा ताला दफ्तर बंद करते समय मैं स्वयं नित्य लगाता था। वह ठीक लगा था। मुनीम जी के घर आदमी भेजा कि सेठ जी कुछ रोकड़ चैक करने आए हैं, आपको बुलाया है। आदमी ने लौटकर चाबी दी और कहा 'भगत जी ब्राह्मण भोजन करा रहे हैं सो दो घंटे की छुट्टी मांगी है। चाबी भेजी है और कहलाया है कि सेठ जी तिजोरी के नम्बर जानते हैं खोल लेंगे। चैक करके चाबी भैया जी को दे जाएं, मैं आकर ले लूंगा। मैंने व शर्मा जी ने समझा, मार ली बाजी, बूढ़ा होता तो पिताजी दब जाते। अब उखाड़ कर, पत्ता काटेंगे।

रोकड़ की जांच की गई और पाई पाई सही निकली।

सारा मामला सुनकर पिताजी नाराज हुए और शर्मा जी पर 100) जुरमाना तथा मुनीम जी को 100) इनाम देकर गए।

शर्मा जी हैरान दफ्तर के और लोग भी आश्चर्यचकित कि यह क्या बात हुई? सबने 200) के बजाए 300) दिए जाने देखे थे। फिर रोकड़ कैसे पूरी उतरी?

मुनीम जी प्रात ही मेरे पास चाबी लेने आए। मैंने जानने की नीयत से कहा— 'रोकड़ में 100) कम थे मुनीम जी! हरद्वार जाने वालों को 100) देने थे तो आप अपने नाम का वाउचर मुझसे कटा लेते, नाहक आपने पिताजी को नाराज कर लिया। 'आज तनख्वाह बटेगी, भैया जी!' मैंने सोचा था कि कल रोकड़ पूरी कर दूंगा एक दिन के लिए क्या वहिए काली कराऊं। रामजी की मरजी क्या कहा सेठ जी ने?" मुनीम जी बोले। —इस

धैर्य के आगे मैं झूठ न बोल सका। मैंने कहा—"रोकड़ पूरी निकली है-मुनीम जी ! सेठ जी शर्मा पर 100) का जुर्माना और आपको 100) इनाम का हुक्म दे गए हैं। यह लीजिए दो वाउचर—जमा खर्च कर दीजिए।

वाउचर लेकर मुनीम जी बोले—"रामजी की मरजी' पर यह बुरा हुआ भैया जी ! शर्मा जी ने झूठ नहीं कहा—रोकड़ कम है मैं अभी चैक करूंगा। मारा गया बेचारा।" कहकर उन्होंने दोनों वाउचर फाड़ दिए। मुनीम जी ने खुद रोकड़ चैक की पर वह पूरी उतरी। मगर यह पूछने पर कि रोकड़ कैसे पूरी निकल रही है। सिवाय रामजी की मरजी' के मुनीम जी और कुछ न बता सके। भुलक्कड़ तो थे ही। किसी से 100) ज्यादा ले लिए होंगे।

मुझे वह दिन इस जन्म मे तो भूलने का नहीं। घर मे प्रातः समय पिता जी ने साठ हजार रुपए का चैक जो एक मुनीम काशी से लेकर आया था, देकर कहा था—"आज फिर काशी से तुम्हारे ताऊ जी की गद्दी एक पचास हजार की दरसनी पेश करेगी, राधेश्याम मुनीम इसलिए काशी से चैक लेकर आया है। जरा होशियारी से रहना, कहीं और हुण्डियां न हों।'

"आप बेफिक्र रहें पिताजी" मैंने सगर्व उत्तर दिया और मैं दफ्तर चला गया।

दफ्तर आकर मैंने चैक अपनी लकड़ी के कैशबक्स मे (जिसकी चाबी मेरे जनेऊ में लगी रहती थी) ऊपर का खाना उठाकर भीतर सम्भालकर रख दिया और ताला बन्द कर दिया। फिर मैं काम में लग गया। प्रायः सवा दस बजे मुनीम जी बैंक जाने लगे तो मुझे चैक की याद आई। कैशबक्स खोल ऊपर का खाना उठाया और देखा तो चैक न था।

मैंने एक-एक कागज उठाकर तलाशी ली पर चैक न था। हाल सुन मुनीम जी ने कैशबक्स का एक-एक कागज देख मारा पर चैक न मिला। शर्मा जी ने आकर एक-एक कागज देखा पर चैक हो तो मिले। मैंने घर फोन किया पिताजी भागे आए। उन्होंने भी एक-एक कागज देखा पर चैक न मिला।

तभी चपरासी ने आकर कहा—बाहर के फोन पर छोटी कोठी से पूछते हैं— 'भगत जी आ गए क्या ? हुण्डी है ? हम पर वज्र गिरा। हम करोड़पति थे, पर पचास हजार की दरसनी का भुगतान ! न जाने और भी हों ?

अब क्या करें ? सब घबरा गए। पिताजी "हाय माँ" कहकर बेहोश हो गिर गए। "अब क्या करें मुनीम जी ?" मैंने पूछा और मेरे नेत्रों से आँसू बहने लगे। "घबराओ मत भैयाजी।" मुनीम जी बोले—"रामजी की मरजी। वह पार लगावेंगे।

शर्मा जी सिगरेट केस निकालकर बाहर चले गए। बूढ़े ने जेब से मैला रिसाली—मुझे क्रोध आ गया। मैंने कड़ककर कहा— बाहर जाइए मुनीम जी। फोन पर बात कीजिए। कहिए हुण्डी ले आए और हाँ तो वो भी ले आते हम सकारेंगे। क्योंकि रामभगते रात के बारह बजे तक भुगतान दे सकते हैं। आप गम न कीजिए जाइए।'

मैंने एम० ए० में प्रथम लिया था। बैंक आफ इंडिया के रत्ना पर निबंध लिखे थे। आज बताऊँगा कि मैं क्या कर सकता हूँ।

मैंने टेलीफोन उठाकर इम्पीरियल बैंक मांगा। उसका एजेंट मार्टिन मेरा सहपाठी था। मैंने कहा— हाँ मार्टिन! मैं नरेन्द्र बोल रहा हूँ। हमारी बनारस ब्रांच ने साठ हजार का एक चेक भेजा था, वह गुम हो गया है मुझे अभी भुगतान देना है। बस भी तुम बाहर के चेक की साख पर ही दे करते। मुझे पचास हजार का ओवर ड्राफ्ट दे दो।"

भाई रुपए की बड़ी तंगी है पर मैं तुम पचास हजार का ओवर ड्राफ्ट कर ना। क्या तब जमा करा दोगे ? मार्टिन ने पूछा। धन्यवाद करता मैंने सगर्व कहा। 'धन्यवाद रहने दो यार। पर और मत माँगना। बड़ी खींच है रुपया की। तुम्हारे ताऊ जी ने आज पांच लाख निकाले हैं।"

मैंने बैंक से रुपए लाने मुनीम जी को भेजा और पिताजी को घर पहुँचाने जमादार घर गया। शर्मा जी को मैंने एक हजार देकर टेलीफोन दफ्तर भेजा कि बाबू का मुँह मीठा कर दें और मैं फौरन काशी, पटना बम्बई, पूना व बंगलौर के अपने दफ्तरों से बात कर सकूँ। प्रायः दो घण्टे में मैंने इन सब मैनेजरों को आदमी के हाथ जितना भी भेज सकें, उतने का ड्राफ्ट भेज देने का आर्डर दे दिया। और कोई हुण्डी रुकी न थी, यह भी ज्ञात हो गया। कल का दिन है परसों तक छह जगह से, कम से कम चार लाख के ड्राफ्ट आ जाएंगे। अधिक भी आ सकते है, चार में तो शक ही नहीं। मैं बेफिक्र हो गया।

जमादार ने जो पिताजी को छोड़ने गया गया था लौटते हुए न जाने किसी को कुछ बताया या टलीफोन दफ्तर स बत फली, पर घण्टे भर म सारे शहर म आग सी लग गई। हमारी कोठी रस्सा माम रही है, सेठ जी गश खा गए रामस्वरूप बाबू के पैर पकड़न गए ह।' न जाने क्या क्या फल गया। अब तो पाच लाख भी हो तो दिवाला बचाना कठिन नजर आने लगा और रोकड़ म ये कुल अस्सी हजार। मरे हाथ पाव फूल गए। पिताजी न भी सुना। वह भी आए और भीड़ तथा उत्तेजना देख दूर से ही लौट गए। हा फोन पर दस दस मिनट के बाद पूछते— क्या हाल ह ? मुनीम जी स कहा— 'मा जी कहती हैं—बड़ सेठ जी आज ही मर हैं। मुनीम जी उनकी गद्दी की, उनकी इज्जत को फिर बचाओ।"

बैंक स पचास हजार आ गए थे। गद्दी म तीस हजार थे। हमने अस्सी हजार से भुगतान शुरू किया था। पर लोगों म आतंक फल गया था। पड़ोसी इष्ट मित्र, ताग वाले मजदूर, बनिए—गरज कि जिसका भी जमा था नेन चला आ रहा था। जिनका कुछ भी जमा न था, व भी तमाशा देखन, आकर खड़े हो गए थे। इधर ताऊ जी के मुनीमो न अफवाह फैला कर स्थिति को और भी बिगाड़न म कसर न छोड़ी थी। मैंने स्वय बाहर आकर भीड़ को कहा— 'आप लोग शान्ति म पैसा लें हमारे पास रुपय की कमी नही है। पर सुन कौन ? और तो और जिनकी माल माल भर की मियादी हुण्डिया थी, वे भी पैसा मागन आए थे। मैंन साख जमाने को कह दिया कि चढे मासों का ब्याज छोड दे तो हम इनका पमेंट कर देंग। मैंन सोचा था नौ-नौ दस दस मास का ब्याज कौन छोड़ना चाहगा। लोग लौटन लगेंग और उन्ह लौटते देख भीड भी लौटनी शुरू हो जायगी पर मुझे धक्का सा लगा जब लोग बोले — ब्याज क्या आप असल म से भी कुछ काट लो, पर पमेंट कर दो। भगवान भला करेगा।,

हरगोविन्द रामभरोसे की साख की नीव हिल गई थी। मैंने सब लोगो को केवल पमेंट पर लगा दिया और फुर्ती से भुगतान शुरू करा दिया। तब भी उम्मीद थी कि पमेंट होता देख भीड शायद लौट जाय। ताऊ जी के गुरगे भीड को नई नई अफवाह गढ कर उकसा रहे थे। कल का दिन निकल जाय, परसो तक तो मेरे ड्राफ्ट आ जायेंगे। एक बार दिवाला बचे तो साख पाताल में पहुच जाती है।

जैसे-जैसे ढाई बजे, तब तक सौ सौ की छोटी रकमो से लेकर पाच-पाच हजार की रकमो तक का कुल भुगतान हम आठ हजार का कर चुके थ। पब्लिक हैरान थी। ताऊ जी के गुरगो की बातो पर उनकी श्रद्धा उखड़

रही थी। वे लौटने पर आमादा हो गए थे। कह रहे थे, "पागल हुए हो यारो। भगत जी मुनीम हैं, साँवरिया शाह खुद खड़े हो जायेंगे, ग्राफ्ट पमेंट करने, आओ घर चलें।"

मैंने हवा बदलती देख गरज कर कहा "न। न। अपना पैसा ले जाइये, रुपया बहुत खाली पड़ा है आज कल। अब आप कहेंगे भी, तो भी हम पाँच साल से कम के लिये जमा नहीं करेंगे।" लोग इस पर भी तैयार हो गए। रुपया तो लिया। अब ले कहाँ जायें ? मैंने सोचा—"मार ली बाजी।" सभी भीड़ को ठेलता हुआ ताऊ जी का मुनीम आगे आया और जल कर गरजा— पहले मेरा पचास हजार की दरसनी सकारो। तब खाली रुपये की डींग मारना।"

मेरा चेहरा फक हो गया और भीड़ में काना-फूसी शुरू हो गई। उगनी से उसे भगत जी की बैठक की जगह जाने का इशारा करके मैं कमरे में घुस गया और कुर्सी पर कटी पतंग की तरह लुढ़क गया। टेलीफोन की घंटी बजी।

इसे उठा कर क्या कहूँगा पिताजी को ? इस धक्के से वह जीते बचेंगे ? दादी जी बचेंगी ? मैं विह्वल हो गया।

आज अब हरगोविन्द रामभरोसे का दिवाला निकलेगा। टाट उलटना होगा। दिया जलाना होगा। भगवान मुझे मौत दे दें। मैं क्या करूँ ? साहूकार के नियम असाध्य हैं। यह मोती की आन है, गई तो गई।

भगत जी भीतर आए—उनकी आँखों में आँसू थे। मैं बूढ़े से लिपट गया और रोकर बोला-- 'माफ कर दो भगत जी। लोग कहते है सांवरिया शाह पीठ पर हैं। अपनी गद्दी को बचाओ, मुनीम जी। मेरे घर को फिर बचाओ।' और बूढ़ा बोला— घबराओ मत भैया जी, रामभरोसे को रामस्वरूप तो क्या खुद राम भी नीचा नहीं दिखा सकते। उन्होंने अन्तरिक्ष की ओर ही दयनीय अश्रुपूरित उपालम्भ की मुद्रा से देखा। मैंने जल्दी से पूछा— है कोई जुगत ?' पूर्ण विश्वास से मुनीम जी ने कहा—'हाँ।' मैंने समझा जब से बूढ़ा नोट निकालेगा। पर बूढ़े ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे गद्दी पर बैठा दिया और स्वयं भी बैठ गया। बोला—'पुकारो उसे भैया जी। सांवरिया शाह आएंगे। यही जुगत है। बोलो—दुःख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी' रोते-रोते मैंने दो तीन बार ही यह धुन उसके साथ कही होगी कि टेलीफोन की घण्टी फिर बजी। उसकी परवाह न करके हमने फिर कहा—"दुःख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी।"

एकाएक मेरा थका दिमाग ताजा सा हो गया।

स्मृति नवीन सी हो गई।

मुझे सूझा चैक कहीं लकड़ी के कैशबक्स के ऊपर के खाने से चिपक न गया हो। बक्स मे नई-नई वार्निश हुई थी। उठकर देखा तो साठ हजार का वह चैक पेंदे मे चिपका था। हर बार ऊपर खाना उठाकर रख देते पेंदा भला क्या दखत ? पिताजी को कह दूँ, यह सोच मैंने टेलीफोन उठाया। घण्टी बज ही रही थी। कान से लगाते ही मैंने सुना—"मैं मार्टिन बोल रहा हूँ नरेन्द्र। यार फोन भी नहीं सुनते। सुना है तुम्हारे यहाँ भीड लौट पडी है रामस्वरूप तुम्हें फेल करने के ख्वाब देख रहा है। डटे रहना समझे। जितना चाहो मगा लो। फेल होकर आधुनिक बैंकिंग को मत लजाना। गुडलक नरेन्द्र।"

मैंने मुनीम जी का कन्धा पकड़कर—हिलाया। अश्रुपूरित वह कह रहे थे—"दुख हरो" मैंने कहा '—चैक मिल गया मुनीम जी। इम्पीरियल बैंक—जितना चाहो, ओवरड्राफ्ट देने को तैयार है।'

बूढ़े ने आँखें खोली। अन्तरिक्ष को प्रणाम किया और कहा—"रामजी की मरजी से रामभरोसे की गद्दी चलेगी भैया जी।"

प्रथम प्रकाशन

"कल्याण, अक्तूबर 1952

(रङ्गमञ्च, नवम्बर 1952)

(बम्बई)

सम्मतियाँ :-

स्व प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

आचाय प रामच द्र शुक्ल—सस्कृत के प्रकाण्ड प्रतिभाशाली विद्वान् हिन्दी के अनन्य आराधक श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अद्वितीय कहानी "उसन कहा था" सम्वत् 1972 अर्थात् सन 1915 की सरस्वती' म छपी थी। इसम पक्के यथाथवाद के बीच सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कय अत्य त निपुणता के साथ सम्पुटित है। घटना इसकी ऐसी है जसी बराबर हुआ करती है, पर उसक भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है—केवल झाक रहा है निलज्जता के साथ पुकार या कराह नही रहा है। कहानी भर म कही प्रेम की निलज्ज प्रगल्भता वेदना की बीभत्स निवृत्ति नही है। सुरुचि क सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कही आघात नही पहुचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही है, पात्रो के बालने की अपक्षा नही। गुलेरी जी एक बहुत ही अनूठी लेखन शैली लकर साहित्य क्षत्र म उतर थ। एसा गम्भीर और पाण्डित्य पूर्ण हास, जैसा इनके लखो मे रहता था और कही देखने म नही आया। अनक गूढ शास्त्रीय विषया तथा कथा प्रसगो की आर विनोदपूर्ण सकेत करती हुई इनकी वाणी चलती था। इनके व्याकरण एसे रूखे विषय क लेख भी मजाक स खाली नही होत थ। यह बधडक कहा जा सकता है कि शली की जो विशिष्टता और अथगर्भित वक्रता गुलेरी जी से मिलती है, वह और किसी लेखक मे नही इनके स्मित हास्य का सामग्री ज्ञान के विविध क्षेत्रा स ली गई है। अत साद ढग म कवल कुछ अत्यन्त व्यञ्जक घटनाएँ और थोडी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गम्भीर सम्वेदना या मनोभावा म पय्यवसित कर सकने की क्षमता इनकी कहानियो म है।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 481—482)

डा बाबू श्यामसुन्दर दास—ये तीना कहानियाँ भिन्न भिन्न परिस्थितिया के सजीव चित्र उपस्थित करती हैं जो गुलेरी जी की प्रतिभा की छाप लग जाने से अत्यन्त मनोहर हो गई ह। 'सुखमय जीवन' म एक नवयुवक का चित्र खीचा गया है जिसन अपनो विद्या के बल एक पुस्तक लिख डाली है पर जिसे अभी तक ससार का अनुभव नही हुआ। परिस्थितिया ने उसे एसा घेरा है कि उसकी आँखें खुल जाती हैं और वह वास्तविक सुखमय जीवन प्राप्त करन मे समर्थ होता है।

'बुद्धू का काटा' तो और भी मनोरंजक दृश्य उपस्थित करता है। एक नवयुवक विद्याध्ययन म लगा हुआ है, उसे ससार का कुछ भी अनुभव नही है। वह लोटे मे फदा डालकर कुए स पानी खीचन म असफल होता है, गाव की स्त्रिया के बीच म पड जान म वह सिर उठाकर बात भी नही कर सकता। ज्यो ज्यो उसका सासारिक अनुभव बढता जाता है उसका अल्हडपन दूर होता जाता है और वह ससार का ज्ञान प्राप्त करता जाता है। परोक्ष रीति से आधुनिक शिक्षा की त्रुटिया का दिग्दर्शन भी कराया गया है। भागवती की वाक्पटुता देखकर स्काट की 'क्वीन मेरी' का स्मरण हो जाता है। 'उसन कहा था' तो गत महायुद्ध मे सिक्खा की वीरता धीरता, दृढता और कर्त्तव्यपरायणता का बडा ही मनोरम दृश्य उपस्थित करती है।
ये तीनो कहानियाँ हिन्दी साहित्य क अमूल्य रत्न है। इनकी बडी विशेषता यह है कि इनम भिन्न-भिन्न पात्रो की भावभगी अपनी अपनी परिस्थिति के अनुसार बडी सुन्दर और अनुकूल भाषा म प्रदर्शित की गई है जिसस कहानी मे सजीवता की पुट बडी ही सुन्दर चढ गइ है। गुलेरी जी हिन्दी और सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनकी लेखनी म बल था। वे हिन्दी मे हास-उपहास व्यग्य, करुण आदि भावा का एसा सुन्दर चित्रण उपस्थित करत थे कि उन्हे पढकर मन मुग्ध हो जाता है। उनकी मीठो चुटकियाँ तो हृदय को चुभ जाने वाली होती है।"

प अमरनाथ झा—प चन्द्रधर जी गुलेरी सस्कृत और हिन्दी के विद्वान तो थे ही साथ ही उनम सहृदयता भी थी। गुलेरी जी की कहानियाँ इस योग्य ह कि इनकी तुलना और भाषाओ की कहानियो से की जाय। इनकी भाषा सरल है स्वाभाविक है। बातचाल की भाषा जैसी होनी चाहिए, वैसी ही है, कृत्रिमता कहीं नहीं है। इस समय की ओर, हमारे देश की दशा पर गुलेरी जी न यथेष्ट प्रकाश डाला है परन्तु इन कहानियो मे कुछ ऐसी विशेषता है कि इनको अमर रखेगी। मानव चरित्र का प्रत्येक कहानी म विलक्षण वर्णन है और मानव प्रकृति का भी। हँसी-ठिठाली के

साथ साथ कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनसे करुण रस उत्पन्न होता है। 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी में तो विशेषकर ऐसी विलक्षणता है कि एतत्कृत-कारुण्ये किमयथा रोदिति ग्रावा" ॥

डॉ बाबूराम सक्सेना—स्व० श्री चन्द्रधर गुलेरी की "उसने कहा था" शीर्षक वाली कहानी हिन्दी साहित्य की अमूल्य थाती है। उसे पढकर जो 'रस' मिलता है, वह सचमुच अद्वितीय है। कितनी ही अन्य कहानियाँ उसकी छाया मन पटल से नहीं मिटा सकती। कहानीकार की प्रतिभा की झलक उनकी 'सुखमय जीवन" और बुद्धू का काटा, में भी मौजूद है। सचित्र और ब्योरेवार वातावरण और भारतीय परिस्थितियों के साथ अप्रत्यक्ष सहृदयता प्रत्येक पृष्ठ पर अंकित हैं। इन कहानियों में सिद्ध हस्तता की छाप है। पाठक के हृदय में सवाल उठता है कि इनकी और कहानिया कहाँ हैं? यशकामना, धन प्राप्ति से कोसो दूर गुलेरी जी साहित्य साधना में संयमित, सटीक व स्तरीय लिखने के कायल थे। जो हो श्री चन्द्रधर गुलेरी जी की ये कहानियाँ अवश्य अमर हैं।

डॉ नगेन्द्र— 'गुलेरी जी के साहित्य का आधार छायानुभूतियाँ नहीं हैं जीवन की मासल अनुभूतियाँ हैं। वे 'सैक्स' के नाम पर झिझकने वाले आदमियों में से नहीं थे। उनका भाषा सम्बन्धी आदर्श न केवल महान और अनुकरणीय है बल्कि उस युग में इतनी सजीव, समर्थ, सशक्त भाषा लिख सकना स्वयं में एक बड़ा आश्चर्य है।"

विचार और अनुभूति
प्रथम संस्करण पृ०46

'सबसे अधिक आश्चर्यजनक है गुलेरी जी की भाषा। ऐसी प्रौढ भाषा उस समय तो कोई लिख ही क्या सकता था। उनके निबन्ध सा गद्य आज के समुन्नत युग में भी कोई लिख सका है, इसमें मुझे सन्देह है। प्रेमचन्द की भाषा में इतनी प्रौढ़ता कहाँ और शुक्ल जी की भाषा में जीवन की इतनी स्फूर्ति कहाँ? गुलेरी जी के बाद इस विषय का उनसे गुरुतर उदाहरण हमारे पास राहुल सांकृत्यायन का है। परन्तु राहुल में एक दोष है—उनमें ह्यूमर नहीं। इसलिए उनकी भाषा में समृद्धि और शक्ति अधिक होते हुए भी स्फूर्ति और फड़क उतनी नहीं है जितनी कि गुलेरी जी की भाषा में है।"

विचार और अनुभूति
प्रथम संस्करण पृष्ठ 51—52

डॉ लक्ष्मी नारायणलाल—"गुलेरी जी की उद्देश्य प्रधान—कहानियों में अनुभूति की अन्त सलिला गहरी संवेदना बनकर अवस्थित है। यही कारण है कि कहानीकार ने विभिन्न संयोगों और घटनाओं का सहारा लेकर कहानियों को एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ाया है और अन्त में सामाजिक आदर्शों को प्रतिष्ठित किया है। कथानक का कलात्मक विकास जो गुलेरी जी की कहानियों में प्रकट हुआ है इसके आगे प्रसाद और प्रेमचन्द के कहानी साहित्य में कोई उदाहरण नहीं मिलता।"

(हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास)
द्वितीय संस्करण पृष्ठ 88, 91

डॉ इन्द्रनाथ मदान— उसने कहा था" में चित्रित पवित्र प्रेम के लिए ऐसा आदर्श-उत्सर्ग महान है। यहाँ प्रेम से प्रेरित लहना सिंह का त्याग और बलिदान" सिडनी कारटन का स्मरण दिलाते हैं। लहनासिंह के चरित्र के माध्यम से परम मानवीय व्यक्तित्व की अनुपम अवतारणा हुई है। यही कारण "उसने कहा था" कहानी को सब श्रेष्ठ कहानियों में प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित करता है।" उनकी कहानियों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भी महत्त्व गुरुतर है।'

(हिन्दी-कहानी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली)
प्रथम संस्करण पृष्ठ 82

डॉ राजनाथ पांडेय—"और कुछ मौलिक कहानियों में विदेश की कहानियों की झलक देखते ही समीक्षक उसे अमुक कहानी पर आधारित मान बैठते हैं। जैसे एक समीक्षक ने चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी "बुद्धू का काँटा" को ऐंटनीट्रोलोप की "माली" कहानी पर आधारित माना है और स्वयं मैंने ही कभी उन्हीं की 'सुखमय जीवन' कहानी को मोपासा की" दट विग आफ मारिज "पर आधारित स्वीकार किया था। किन्तु मैंने दोनों कहानियों की संवेदनाओं की तुलनात्मक समीक्षा कर के गुलेरी जी की पूर्ण मौलिकता का निर्देशन भी करा दिया था।"

—"प्रकर" वर्ष 2, नवम्बर 1970 अङ्क 11 पृष्ठ 1
नवभारती सहकार प्रकाशन प्रतिष्ठान दिल्ली—7

प्रो० वासुदेव—"गुलेरी जी की कहानियों के कथाशिल्प को देखकर कुछ समीक्षकों ने उनकी मौलिकता में सन्देह व्यक्त किया था और वे उनमें किन्हीं विदेशी कहानियों की छाया ढूंढते थे। परन्तु यह केवल अनुमान बनकर रह गया क्योंकि इस मन्तव्य में प्रामाणिकता नहीं थी।'

—हिन्दी कहानी और कहानीकार
प्रथम संस्करण पृष्ठ 122—123

श्री राजेंद्र यादव — " यों इन दिनों कहानियाँ बहुत निकली होंगी, लेकिन मैं समझता हूँ कि हिन्दी की पहली मौलिक और कलापूर्ण कहानी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' –1915 है और उससे ही यहां की आधुनिक कहानी का प्रारम्भ मानना चाहिए। उन्होंने कथाशिल्प की दृष्टि से कथानकों को जिस सांकेतिक ढंग से मयागो और घटनाओं के माध्यम से बुना है, वह कहानी को प्रौढ़ स्तर पर ही प्राप्त होता है। सजीव वातावरण तथा स्मृति चित्रों से इसकी पूर्वदीप्ति सभी बातें कहानी कला में गुलेरी जी की महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। कहानियों में मानवीय और यथार्थ पात्रों की अवतारणा के कारण स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य गुलेरी जी का ऋणी है।"

कहानी स्वरूप और संवेदना
प्रथम संस्करण पृष्ठ 19-22 अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली

स्व. योगेश्वर शर्मा गुलेरी

श्री विष्णु प्रभाकर (818 कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली)

ये कहानियाँ अपने कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टि से आधुनिक कहानियां हैं। इनकी संवेदना आज भी उतनी ही है, जितनी उनके रचना काल में थी। भाई योगेश्वर जी योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। अन्तर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में उनकी दोनों ही प्रेषित कहानियां पुरस्कृत हुई थीं। यही उनकी योग्यता का यथेष्ट प्रमाण है। भेजने से पूर्व उन दोनों कहानियों को लेकर हम दोनों में काफी चर्चा हुई थी। उन दोनों ने मेरे मन को छुआ था। वे जीते रहते तो आज अग्रणी कथाकार होते।

डॉ. प्रोफेसर राममूर्ति शर्मा (डी. लिट. अध्यक्ष संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़)

हिन्दी कथा साहित्य की परम्परा में इन कहानियों का प्रस्तुत संग्रह निःसन्देह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध होगा।

श्री रामकृष्ण भारती

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी के पुत्र तथा विद्वान् स्व. योगेश्वर जी की लगभग एक दर्जन कहानियां अत्यन्त लोकप्रिय हुईं। हिन्दी कहानी क्षेत्र के लिए मनोविज्ञान तथा विज्ञान के नए क्षेत्रों के लिए इंगित करके उन्होंने एक महान पिता के महान पुत्र बनने का प्रमाण दिया। 42 वर्ष की आयु में ही उनकी असामयिक मृत्यु हो गई। हम उनको न बचा पाए इसे हिन्दी अथवा अपना दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। अभी इस संक्रमण काल में हमें ऐसे निष्ठावान लेखकों तथा साहित्य सेवियों की अत्यन्त आवश्यकता थी।

(नवभारत टाइम्स दिल्ली 26 अक्तूबर, 1952 ई.
लेख—स्व. श्री योगेश्वर गुलेरी)

श्री राम शर्मा प्रेम—श्री योगेश्वर जी सफल कथाकार आलोचक लेखक थे। वे भावुक थे पर भयंकर कष्ट होने पर भी अंतिम समय तक उनकी बुद्धि स्थिर थी और चेहरे पर दुखानुभूति बहुत कम दिखाई देती थी। उनकी चेतना और आत्मविश्वासपूर्ण धीमे स्वर से ज्ञात होता था कि सब ओर फैली घोर निराशा में भी यह व्यक्ति अपनी कहानी 'रामजी की मरजी' के सहारे निश्चित है और समझता है कि वह जो करेगा ठीक करेगा।

नया समाज (कलकत्ता) सितम्बर 1952 पृष्ठ 221

तीन संस्मरण "स्वर्गीय योगेश्वर शर्मा गुलेरी"।

कृष्णदेव शर्मा—पिछले कुछ महीनों से योगेश्वर जी का पं॰ बनारसी दास चतुर्वेदी से अपने पूज्य पिता के श्राद्ध की समुचित व्यवस्था तथा साहित्यिक कृतित्व मूल्यांकन के प्रकाशन विषयक पत्र व्यवहार चल रहा था परन्तु यह किसे पता था कि स्वयं उनके श्राद्ध की बात इतनी शीघ्र सोचनी होगी।

मेरा सुझाव है कि हिन्दी जगत उनकी प्रसिद्ध कहानियों का संग्रह प्रकाशित करके उनकी कीर्ति की रक्षा कर स्वर्गीयात्मा के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करे।

(मासिक) नया समाज (कलकत्ता) सितम्बर 1952 पृष्ठ 220

देवेन्द्र प्रताप—योगेश्वर जी स्वाभिमानी, दृढ़निश्चयी अध्यवसायी तथा उच्च कोटि के विद्वान थे। अभी कोई दस वर्ष पूर्व देहली के हिन्दुस्तान द्वारा आयोजित अखिल भारतवर्षीय हिन्दी कथा प्रतियोगिता में उन्हें 'रामजी की मरजी' व 'जीवन का संगीत' पर पुरस्कार मिले थे। इन कहानियों का विशेष गुण है कि इनमें अत्यन्त रोचक शैली, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उच्च भावना तथा बहुत ही सरल भाषा का प्रयोग करके योगेश्वर जी एक सिद्धहस्त कुशल कथाकार के रूप में प्रकट हुए हैं।

नया समाज सितम्बर 1952 (219)

डॉ॰ मनोहरलाल (हिन्दी विभाग श्रीराम कॉलेज आफ कॉमर्स दिल्ली–110007)

कथा साहित्य में पं॰ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के पुत्र स्व॰ योगेश्वर गुलेरी का कृतित्व उल्लेखनीय है। वे अच्छे निबंधकार, कवि व आलोचक भी थे। उनकी कथाओं के समग्र मूल्यांकन का प्रश्न भी अद्यावधिपर्यन्त अनुत्तरित रहा। यद्यपि उनके साहित्य ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को समृद्ध तथा अलंकृत किया है।

'हिन्दी साहित्य को कांगड़ा की देन'
दैनिक हिन्दुस्तान ता॰ 16 अप्रैल, 1978

श्री सत्येन्द्र शर्मा (सम्पादक गिरिराज साप्ताहिक, शिमला हि. प्र.)

1948 से 1952 तक की अवधि में गुलेरी जी की रचनाएँ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में धड़ल्ले से प्रकाशित हुईं। विशाल भारत और स्व. मोहन सिंह सेंगर द्वारा सम्पादित कलकत्ता से प्रकाशित नया समाज मासिक में उनकी कई कहानियाँ प्रकाशित हुईं। योगेश्वर जी ने देहरादून की हिन्दी साहित्य समिति से सम्बद्ध होकर महत्त्वपूर्ण कार्य किए। हिन्दी के प्रसार के लिए पूर्ण तत्पर तथा लेखन के मामले में (और वैसे भी) मुझे वे बड़े संयमी लगते थे। काफी मजाई करते थे रचना की। 'रामजी की मरजी' और 'जीवन का संगीत' में चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बखूबी हुआ। योगेश्वर जी की समस्त रचनाएँ योगेश्वर ग्रन्थावली प्रारूप में प्रकाशित की जानी चाहिए।

—"प्रकाण्ड पंडित के मेधावी पुत्र स्वर्गीय योगेश्वर गुलेरी"
हिमप्रस्थ मासिक शिमला दिसम्बर, 1974, पृष्ठ 21-25

श्री अखिल विनय (पो. बॉ. 7746, बम्बई 92)

श्री योगेश्वर गुलेरी की कहानियाँ सशक्त और युगसापेक्ष हैं। कहानियों में सामाजिक जनजीवन का चित्रण एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से कलात्मकता प्रतिष्ठित करते हुए उन्होंने सामाजिक आदर्शों को भी पूर्णतः निभाया है।

डॉ. सुशीलकुमार फुल्ल—(हिन्दी विभागाध्यक्ष कृषि विश्वविद्यालय पालमपुर, हिमा. प्र.)

डा. विद्याधर शर्मा गुलेरी द्वारा सम्पादित 'गुलेरी जी की अमर कहानियों' में स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा एवं स्वर्गीय योगेश्वर जी की कहानियों को पहली बार एक साथ प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी कथा साहित्य के जिज्ञासुओं तथा अनेक अनुसंधित्सुओं के लिए एक मानक तथा प्रामाणिक ग्रन्थ का काम करेगा। पिता पुत्र की कहानियों में कलात्मकता तथा कथा-वस्तु की दृष्टि से विविध रसरंग की सामग्री मिलती है। डा. विद्याधर गुलेरी का प्रयास साधक, महत्त्वपूर्ण तथा प्रशंसनीय है।

प्रोफेसर एस. के. शर्मा एम. डी. (अध्यक्ष फार्माकोलोजी विभाग मेडिकल कालेज, अजमेर)

'स्व. भाई योगेश्वर और ताया श्री पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी के इस कथा संग्रह के प्रकाशन का हिन्दी जगत में गुलेरी ग्रन्थावली की भाँति पूर्ण स्वागत मूल्यांकन असंदिग्ध है। गुलेरी जी की कहानियाँ हिन्दी कथा यात्रा के लिए महत्त्वपूर्ण मीलपत्थर सिद्ध हुई हैं और होंगी।

मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

——

प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की लेख रचनावली

1 वैदिक पष्ट तप
2 काशी
3 गादानम्
4 सुदशन की सुदृष्टि
5 सोऽहम्
6 इण्डियन नशनल कांग्रे स
7 कुछ लोगा क नाम
8 काशी नागरी प्रचारिणि के कायकर्त्ता
9 खर सज्जना को खरी चिट्ठियाँ
10 घण्टाघर
11 जय जमुना मैया जी की
12 डाक्टर महेन्द्र लाल सरकार
13 डिनामेनिशल कालेज
14 महर्षियो की वृष्टि
15 हा हा ता ता
16 पुरानी हिन्दी
17 ग्रांख
18 धम सक्ट
19 बाबू ग्रयोध्या प्रसाद के सस्मरण
20 वेद मे पृथ्वी की गति
21 बृहद्देवता
22 बग का भग
23 समालोचक का चौथा वप
24 सगीत की धुन
25 हिन्दी भापा के उपन्यास लेखको क नाम
26 धमपरायण रीछ
27 ग्रश्वमेध
28 सम्पादक नागरी प्रचारिणि पत्रिका के नाम
29 ग्राचाय सत्यव्रत सामश्रमी
30 साप के काटने का विलक्षण इलाज
31 पाणिनी की कविता
32 यूनानी प्राकृत
33 पुराने राजाग्रो की चिट्ठियाँ
34 जयसिंह प्रकाश
35 यूरोपियन सस्कृत
36 सस्कृत की टिपटारी
37 सिंहल द्वीप मे महाकवि कालिदास का समाधिस्थल
38 कालिदास की देशभापा
39 खेल ही शिक्षा है
40 जालहस की सुभाषित मुक्तावली ग्रौर चन्द्र की पडम
41 ग्रमगल के स्थान पर मगल शब्द
42 सुमरनी के मनके

43 खोज की खाज
44 कलकत्ते का अग्नोरास्प्टि
45 अशाक शास्त्री
46 अनुवादा की बाढ़
47 आप हि दी
48 जोहा हुआ सोना
49 मारेसि मोहि कुठाऊँ
50 धम मे उपमा
51 लायलपुर क वकु
52 घड़ी क पुर्जे
53 दूध के पगम्बर
54 दा प्रश्ना का एक उत्तर
55 कछुआ धम
56 नौरगसाह क नौरग
57 हिन्दी साहित्य
58 कस्तूरी मृग
59 पुत्कार या पुकारना
60 श्रद्धा
61 सुगलेता मृगनेत्रा
62 क्रियाहीन हिन्दी
63 बेसिर की हिन्दी
64 भारद्वाज गृह्यसूत्र
65 पुराना व्यापार
66 अक्ल बनाम नकल
67 पानी पीकर रह जाना
68 ढेले चुन ला
69 पोथी पढ पढ जगमुआ
70 मख मारना
71 असूयपश्या राजदारा
72 हलवाई
73 ब्रह्मचारी को पान खिलाना
74 पाणिनी की कविता
75 बनारसी ठग
76 कुछ पुराने रिवाज और विनोद
77 वलावित्त
78 डिंगल
79 रामचरित मानस और मस्कृत कविया म बिम्बप्रतिबिम्ब भाव
80 छट्ठ
81 विरायण की सरक्षण की
82 पूर्णपात्र
83 वदिक भाषा मे प्राकृतपन
84 पूव तमाशा
85 देवाना प्रिय
86 आत्मघात
87 होली की ठिठोली व एप्रिल फूल
88 उल्लू ध्वनि-हुर्रा
89 वशच्छेद
90 विक्रमोवशी की मूलकथा
91 पृथ्वीराज विजय महाका य
92 पृथुवन्य का अभिषक
93 मनुवैवस्वत
94 सुकन्या की वदिक कहानी
95 पुन शेप की कहानी
96 पुराने राजाओ की गाथाए
97 वाजपेय
98 राजसूय
99 सौत्रामणी का अभिषेक
100 चाणूर अन्ध
101 महर्षि च्यवन की रामायण
102 देवकुल
103 शैशुनाक की मूर्तियाँ
104 राजाओ की नीयत से बरकत
105 बौद्धो के काल मे भारतवप
106 पुरानी पगडी
107 खसो के हाथो ध्रुव स्वामिनी
108 पश्चिमी नक्षत्रो के नाम
109 हूण

110 भवाई
111 कादम्बरी के उत्तरार्द्ध के कर्ता
112 कादम्बरी और दशकुमार चरित
113 सुतातित कुमाग्नि
114 न्याय घण्टा
115 पंच महाशब्द
116 अवन्ता सुन्दरी
117 शिक्षा के आदर्शों मे परिवर्तन
118 श्री श्री श्री
119 समीत
110 चारण और भाटो का झगड़ा
121 खुली चिट्ठी
122 समालोचना

8961

श्री योगेश्वर शर्मा द्वारा रचित साहित्य

1 गम्भीर विषयों पर सरल विचार (निबन्ध संग्रह)

2 विडम्बना (उपन्यास)

3 विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित चौदह कहानियाँ तथा पन्द्रह निबन्ध।

4 सींखचों के भीतर (अनुवाद)

5 मुद्रास्फीति, उसके कारण और उपचार

6 ग्रामोद्योगों की जाँच प्रश्नावली

7 Blood Money

8 Europe through Gandhian eyes

9 Magan Deepa

10 Portion of Public Finance and on Poverty

गुलेरीजी की अमर कहानियाँ

सम्पादक
डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी
एम ए (हिन्दी संस्कृत) पी एच-डी


कृष्णा ब्रदर्स
महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर